ढाई आखर प्रेम का

आचार्य रजनीश

ढ़ाई आखर प्रेमका

•

भगवानश्री रजनीश

जीवन जागृति केन्द्र प्रकाशन
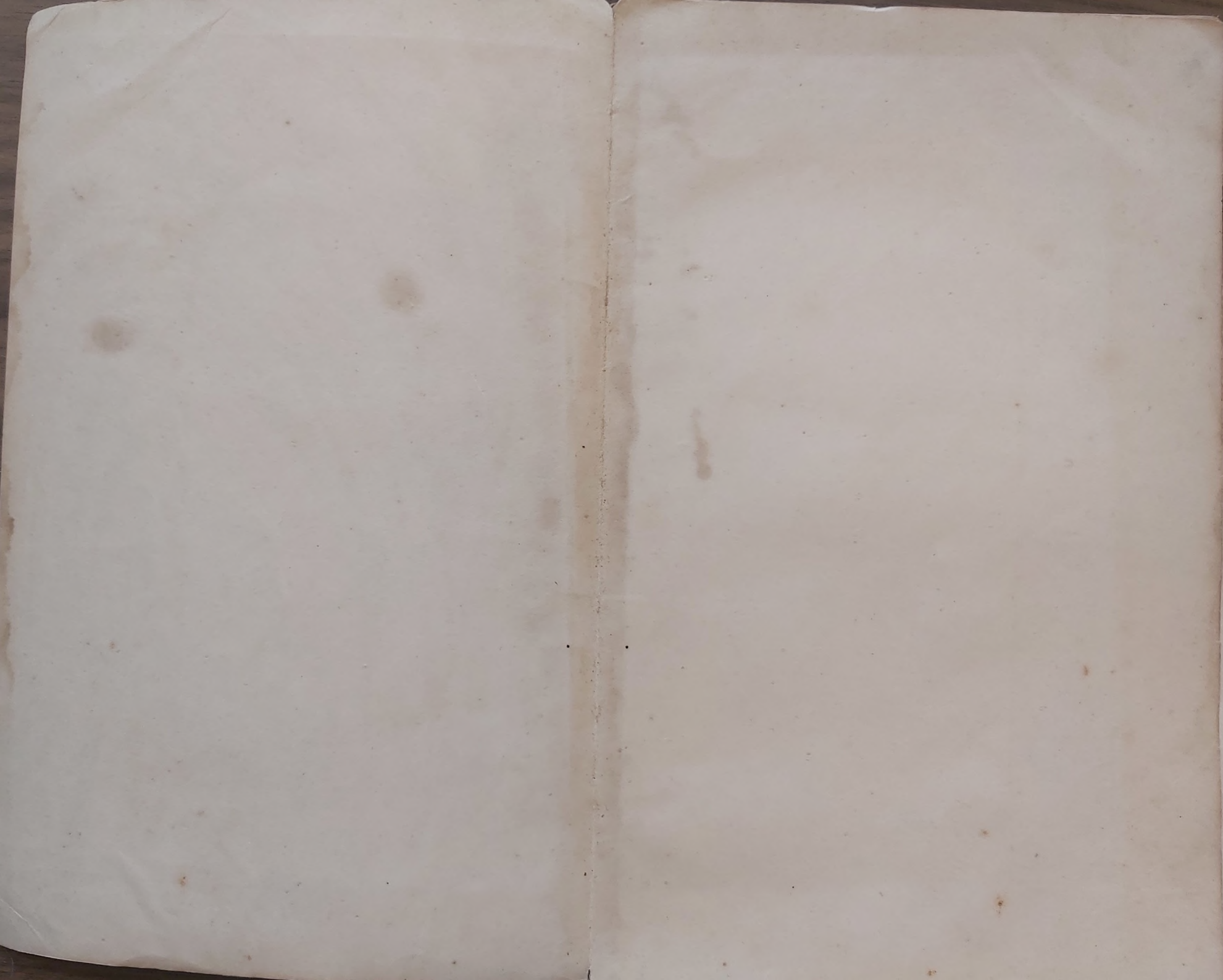
ढाई आखर प्रेम का

[१५० अमृत-पत्रों का संकलन]

•

भगवान्श्री रजनीश

संकलन :

स्वामी कृष्ण सरस्वती

•

सम्पादन :

स्वामी योग चिन्मय

जीवन जागृति केन्द्र प्रकाशन

भगवान्‌श्री रजनीश : एक परिचय

भगवान्‌श्री रजनीश वर्तमान युग के एक युवा-द्रष्टा, क्रांतिकारी विचारक, आधुनिक संत, रहस्यदर्शी-ऋषि और जीवन-सर्जक हैं।

वैसे तो धर्म, अध्यात्म व साधना में ही उनका जीवन-प्रवाह है; लेकिन कला, साहित्य, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र, आधुनिक विज्ञान आदि में भी वे अनूठे और अद्वितीय हैं।

जो भी वे बोलते हैं, करते हैं, वह सब जीवन की आत्यंतिक गहराइयों व अनुभूतियों से उद्‌भूत होता है। वे हमेशा जीवन-समस्याओं की गहनतम जड़ों को स्पर्श करते हैं। **जीवन को उसकी समग्रता में जानने, जीने और प्रयोग करने के वे जीवन्त प्रतीक हैं।**

जीवन की चरम ऊँचाइयों में जो फूल खिलने संभव हैं, उन सबका दर्शन उनके व्यक्तित्व में संभव है।

११ दिसम्बर, १९३१ को मध्यप्रदेश के एक छोटे-से गाँव में इनका जन्म हुआ। दिन-दुगुनी और रात-चौगुनी इनकी प्रतिभा विकसित होती रही। सन् १९५७ में इन्होंने सागर-विश्वविद्यालय से दर्शन-शास्त्र में एम० ए० की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्रथम उत्तीर्ण की। ये अपने पूरे विद्यार्थी-जीवन में बड़े क्रांतिकारी व अद्वितीय जिज्ञासु तथा प्रतिभाशाली छात्र रहे। बाद में क्रमशः रायपुर व जबलपुर के दो महाविद्यालयों में क्रमशः १ और ८ वर्ष के लिए आचार्य (प्रोफेसर) के पद पर शिक्षण का कार्य करते रहे। इस बीच इनका पूरे देश में घूम-घूम कर प्रवचन देने व साधना-शिविर लेने का कार्य भी चलता रहा।

बाद में अपना पूरा समय **प्रायोगिक साधना के विस्तार व धर्म के पुनरुत्थान** में लगाने के उद्देश्य से आप सन् १९६६ में नौकरी छोड़ कर आचार्य-पद से मुक्त हुए। तब से आप लगातार देश के कोने-कोने में घूम रहे हैं। विराट् संख्या में भारत की जनता की आत्मा का इनसे सम्पर्क हुआ है।

इनके प्रवचनों व साधना-शिविरों से प्रेरणा पाकर अनेक प्रमुख शहरों में उत्साही मित्रों व प्रेमियों ने जीवन जागृति केन्द्र के नाम से एक मित्रों व साधकों

का मिलन-स्थल (संस्था) निर्मित किया है। वे भगवान्श्री के प्रवचन व शिविर आयोजित करते हैं तथा पुस्तकों के प्रकाशन की व्यवस्था करते हैं। **जीवन जागृति आन्दोलन** का प्रमुख कार्यालय बम्बई में लगभग ८ वर्षों से कार्य कर रहा है। अब तो भगवान्श्री भी अपने जबलपुर के निवास-स्थान को छोड़ कर १ जुलाई, १९७० से स्थायी रूप से बम्बई में आ गये हैं, ताकि जीवन जागृति आन्दोलन के अन्तर्राष्ट्रीय रूप को सहयोग मिल सके।

जीवन जागृति आन्दोलन की ओर से एक मासिक पत्रिका "युकान्द" (युवक क्रांति दल का मुख-पत्र) पिछले दो वर्षों से तथा एक त्रैमासिक पत्रिका "ज्योति शिखा" पिछले पाँच वर्षों से प्रकाशित हो रही है। भगवान्श्री के प्रवचनों के संकलन ही पुस्तकाकार में प्रकाशित कर दिये जाते हैं। अब तक लगभग ३० बड़ी पुस्तकें तथा २१ छोटी पुस्तिकाएँ मूल हिन्दी में प्रकाशित हुई हैं। अधिकतर पुस्तकों के गुजराती, अंग्रेजी व मराठी अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं। अनेक नयी अप्रकाशित पुस्तकें प्रेस के लिए तैयार पड़ी हैं। अब तक भगवान्श्री प्रवचन-मालाओं में तथा साधना-शिविरों में लगभग २००० घंटे जीवन, जगत् व साधना के सूक्ष्मतम व गहनतम विषयों पर सविस्तार चर्चाएँ कर चुके हैं।

अब भारत के बाहर भी अनेक देशों में इनकी पुस्तकें लोगों की प्रेरणा व आकर्षण का केन्द्र बनती जा रही हैं। **हजारों की संख्या में देशी व विदेशी साधक इनसे विविध गूढ़तम साधना-पद्धतियों एवं प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में प्रेरणा पा रहे हैं।** योग व अध्यात्म के संदेश व प्रयोगात्मक जीवन-क्रान्ति के प्रसार हेतु विभिन्न देशों से इनके लिए आमंत्रण आने शुरू हो गये हैं। शीघ्र ही भारत ही नहीं, वरन् अनेक पाश्चात्य देशवासी भी इनके व्यक्तित्व से प्रेरणा व सृजन की दिशा पा सकेंगे।

२५ सितम्बर, १९७० से मनाली में आयोजित एक दस दिवसीय साधना-शिविर में भगवान्श्री के जीवन का एक नया आयाम सामने आया। उन्होंने वहाँ कहा कि संन्यास जीवन की सर्वोच्च समृद्धि है, अतः उसे पूर्णता में सुरक्षित रखा जाना चाहिए। उन्हें वहाँ प्रेरणा हुई कि वे संन्यास-जीवन को एक नया मोड़ देने में सहयोगी हो सकेंगे और **नाचते हुए, गीत गाते हुए, आनंदमग्न, समस्त जीवन को आलिंगन करने वाले, सशक्त व स्वावलम्बी संन्यासियों के वे साक्षी बन सकेंगे।** शिविर में तथा उसके बाद भी अनेक व्यक्तियों ने सीधे परमात्मा से सावधिक

(Periodical) संन्यास की दीक्षा ली। भगवान्श्री इस घटना के साक्षी व गवाह रहे।

इस **"नव संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय** (Neo-Sannyas-International) में अब तक ४३२ व्यक्तियों ने संन्यास के जीवन में प्रवेश किया है। कुछ ही वर्षों में इनकी संख्या सैकड़ों व हजारों की होने वाली है। **ये संन्यासी जीवन की पूर्ण सघनता व व्यवहार में सक्रिय भाग लेने के साथ ही साथ विशिष्ट साधना-पद्धतियों में रत हैं।** इस दिशा में संन्यासियों का एक 'कम्यून' "विश्वनीड़" के नाम से पोस्ट-आजोल, तालुका-बीजापुर, जिला-महेसाणा (गुजरात) में कार्यरत हो चुका है। **ये संन्यासी** भगवान्श्री रजनीश की नयी जीवन-दृष्टि, जीवन-सृजन, **जीवन-शिक्षा एवं प्रायोगिक धर्म-साधना के बहु-आयामों में निपुण एवं सक्षम होकर भारत एवं विश्व के कोने-कोने में धर्म व संस्कृति के पुनरुत्थान तथा "धर्म-चक्र-प्रवर्तन"** हेतु बाहर निकल रहे हैं।

भगवान्श्री का व्यक्तित्व अथाह सागर जैसा है। उनके सम्बन्ध में संकेत मात्र हो सकते हैं। जैसे कि जो व्यक्ति परम आनंद, परम शांति, परम मुक्ति, परम निर्वाण को उपलब्ध होता है, उसकी श्वास-श्वास से, रोयें-रोयें से, प्राणों के कण-कण से एक संगीत, एक गीत, एक नृत्य, एक आह्लाद, एक सुगंध, एक आलोक, एक अमृत की प्रतिपल वर्षा होती रहती है। और समस्त अस्तित्व उससे नहा उठता है। इस संगीत, इस गीत, इस नृत्य को कोई प्रेम कहता है, कोई आनंद कहता है और कोई मुक्ति कहता है। लेकिन, वे सब एक ही सत्य को दिये गये अलग-अलग नाम हैं।

ऐसे ही एक व्यक्ति हैं——भगवान् रजनीश। **जो मिट गये हैं, शून्य हो गये हैं, जो अस्तित्व व अनस्तित्व के साथ एक हो गये हैं।** जिनकी श्वास-श्वास अंतरिक्ष की श्वास हो गयी है। जिनके हृदय की धड़कनें चाँद-तारों की धड़कनों के साथ एक हो गयी हैं। जिनकी आँखों में सूरज-चाँद-सितारों की रोशनी देखी जा सकती है। जिनकी मुस्कराहटों में समस्त पृथ्वी के फूलों की सुगंध पायी जा सकती है। जिनकी वाणी में पक्षियों के प्रातः-गीतों की निर्दोषता व ताजगी है। और जिनका सारा व्यक्तित्व ही एक कविता, एक नृत्य व एक उत्सव हो गया है।

इस नृत्यमय, संगीतमय, सुगंधमय, आलोकमय व्यक्तित्व से प्रतिपल निकलने वाली प्रेम की, करुणा की लहरों के साथ जब लोगों की जिज्ञासा व मुमुक्षा का संयोग होता है, तब प्रवचनों के रूप में उनसे ज्ञान-गंगा बह उठती है।

उनके प्रवचनों में जीवन के, जगत् के, साधना के, उपासना के विविध रूपों व रंगों का स्पर्श है। उनमें पाताल की गहराइयाँ हैं और विराट् अंतरिक्ष की ऊँचाइयाँ हैं। देश व काल की सीमाओं के अतिक्रमण के बाद जो महाशून्य और निःशब्द की अनुभूति शेष रह जाती है उसे शब्दों में, इशारों में, मुद्राओं में व्यक्त करने का सफल-असफल प्रयास भी उनके प्रवचनों में रहता है।

उनके प्रवचन सूत्रवत् हैं, सीधे हैं, हृदय-स्पर्शी हैं, मीठे हैं, तीखे हैं और साथ ही पूरे व्यक्तित्व को झकझोरने व जगाने वाले भी हैं। **उनके प्रवचनों और ध्यान के प्रयोगों से व्यक्ति की निद्रा, प्रमाद व मूर्च्छा टूटती है और वह अन्तः व बाह्य रूपान्तरण, जागरण और क्रांति में संलग्न हो जाता है।** ●

प्रे मा मृ त

[प्रस्तावना]

प्रेम साधना भी है और सिद्धि भी।

प्रेम प्रथम और अंतिम दोनों चरण ही है।

प्रेम मुक्ति है।

प्रेम परमात्मा का स्वभाव है।

प्रेम--शांत, सजग व संतुलित व्यक्तित्व की सुगंध है।

प्रेम--स्वस्थ, जाग्रत व मुक्त जीवन-ऊर्जा से निकलने वाला संगीत है।

प्रेम--आनंद से भर गये प्राणों का नृत्य है।

प्रेम का प्रारंभ है--ध्यान।

और प्रेम की पूर्णता है--समाधि।

इसलिए प्रेम का प्रारंभ तो है, लेकिन अंत नहीं।

और अनादि--असीम हो गया प्रेम ही प्रार्थना है।

प्रेम के अभाव में जीवन एक पीड़ा है, संताप है, घुटन है।

लेकिन, प्रेम के जन्म के साथ ही जीवन बन जाता है मुक्ति--आनन्द--आलोक।

लेकिन, हमारे जीवन में प्रेम का कोई झरना नहीं बहता, प्रेम की कोई किरण नहीं दिखती।

कारण क्या है?

क्योंकि, हम सतत लदे हुए हैं अतीत के बोझ से और खिचे-तने हुए हैं--भविष्य के स्वप्नों में।

प्रत्येक व्यक्ति के भीतर प्रेम के, आनन्द के, शांति के, मुक्ति के झरनों का स्रोत है।

लेकिन, वह अमृत-स्रोत दबा हुआ है विचारों के--संस्कारों के पत्थरों से--मूर्च्छा की शिलाओं से।

साथ ही प्रकृतिगत विकास ने मनुष्य को जहाँ ला खड़ा किया है वहाँ बुद्धि-विचार-तर्क तो विकसित हो चुका है, लेकिन अब मनुष्य को स्वयं एक छलाँग लगानी पड़ेगी--निर्विचार में--अतर्क्य में--रहस्य में।

और जो व्यक्ति निर्विचार जीवन में, अतर्क्य जीवन में, जीवन के विराट् रहस्य में छलाँग लगा जाता है--उसके ऊपर से अहंकार के, मूर्च्छा के, विचारों के, संस्कारों के, यांत्रिकताओं के, अतीत के, भविष्य के सारे पत्थर हट जाते हैं।

और तब प्रेम का सदा से भीतर प्रतीक्षारत झरना फूट पड़ता है।

और उस झरने के जन्म के साथ ही व्यक्ति पाता है कि वह तो मिटा,--केवल प्रेम का अनन्त सागर ही बचा है।

और वही आनन्द है।

वही परमात्मा है।

वही मुक्ति है।

इस ढाई अक्षर--"प्रेम" में सब समा जाता है।

जीवन की सारी ऊँचाइयाँ और जीवन की सारी गहराइयाँ।

जीवन की सारी उपलब्धियाँ और जीवन का सारा विकास।

जीवन की सारी धन्यता और जीवन की सारी दिव्यता।

लेकिन कैसे मनुष्य उपलब्ध हो प्रेम को?

कुछ जीवन-सूत्रों की ओर संकेत किया जा सकता है जो प्रेम के जन्म की कीमिया, रहस्य-कुंजियाँ हैं।

ध्यान की तैयारी--अर्थात् प्रसुप्त जीवन-ऊर्जा का जागरण और संरक्षण।

ध्यान--अर्थात् मौन, विश्राम, साक्षी, सजगता, अमूर्च्छा।

समर्पण--अर्थात् सर्व-स्वीकार, तथाता, बहना।

संन्यास--अर्थात् अहं-विसर्जन, डूबना--खोना--मिटना और पूर्ण होना।

●

प्रस्तुत पुस्तक में भगवान्श्री रजनीश के प्रेम--करुणा--आनंद से उद्भूत हुए १५० अमृत-पत्रों का संकलन है।

इनमें प्रेम-साधना व प्रेम-सिद्धि से सम्बन्धित जीवन-सूत्रों को भगवान्श्री ने अनेकानेक संभाव्य आयामों से आलोकित किया है।

वे खुद ही प्रेम-मूर्ति हैं।

प्रेम के सागर हैं।

उनका समग्र व्यक्तित्व प्रतिपल प्रेमामृत बरसाता रहता है।

उनके परिचय में आने वाले खोजी-साधक प्रेम-पिपासु इस अतल प्रेम-सागर में नहाते हैं--डूबते हैं--खोते हैं--मिटते हैं।

और मुक्त होते हैं।

परमानन्द को उपलब्ध होते हैं।

●

इसके पूर्व प्रकाशित हुए भगवान्श्री के अमृत-पत्रों के चार संकलन हैं--'क्रांतिबीज', 'पथ के प्रदीप', 'प्रेम के फुल' और अन्तर्वीणा'।

इसी पत्र-शृंखला में भगवान्श्री द्वारा अनेक साधकों व प्रेमियों को लिखे गये अमृत-पत्रों के आगामी जो तीन संकलन होंगे उनके नाम हैं--'पद घुंघरू बाँध', 'घूंघट के पट खोल' और 'जिसने चाखा रस हरि नाम का'।

आप सबके जीवन में भी प्रेम की अमृत-वर्षा संभव हो सके--इस प्रेरणा व आशा के साथ प्रस्तुत है: 'ढाई आखर प्रेम का'।

--स्वामी योग चिन्मय के प्रणाम

ए-१, वुडलेण्ड अपार्टमेंट्स,
पेडर रोड, बम्बई-२६

अन्तर्वस्तु

[पत्रानुक्रम]

१ / प्रेम मुक्ति है

प्यारी शोभना,

प्रेम। तेरा दूसरा पत्र।

तू मेरी कितनी अपनी है--इसे कहने का कोई भी मार्ग नहीं है।

इसलिए तू पूछे ही न तो अच्छा है।

और पागल! मुझे देने के लिए तू कुछ भी न खोज पायेगी--क्योंकि **तेरे पास है ही क्या जो तूने नहीं दे दिया है?**

प्रेम पूर्ण से कम कुछ भी नहीं लेता है।

इसलिए ही तो वह **मुक्ति है।**

क्योंकि वह पीछे शून्य कर जाता है।

या कि पूर्ण।

वैसे--**शून्य या पूर्ण एक ही सत्य को कहने के लिए दो शब्द हैं।**

शब्बकोश में वे विरोधी हैं, लेकिन सत्य में पर्यायवाची।

मैं **तेरे** द्वार पर किसी भी दिन उपस्थित हो जाऊँगा।

लेकिन वह तेरे द्वार जैसा मेरे मन में नहीं आता है।

लगता है: मेरा घर--मेरा द्वार!

गड़बड़ हो गयी है!

'मेरी शोभना' के कारण ही सब गड़बड़ हो गयी है!

रजनीश के प्रणाम

१८-७-१९६८

[प्रति : सुश्री शोभना, अब मा योग शोभना, बम्बई]

२ / प्रेम में पूर्णतया खो जाना ही प्रभु को पा लेना है

प्यारी दुलारी,

प्रेम। तेरा पत्र।

इतने प्रेम से भरी बातें तूने लिखी हैं कि एक-एक शब्द मीठा हो गया है।

क्या तुझे पता है कि **जीवन में प्रेम के अतिरिक्त न कोई मिठास है, न कोई सुवास है ?**

शायद प्रेम के अतिरिक्त और कोई अमृत नहीं है !

काँटों में भी जो फूल खिलते हैं--वे शायद प्रेम से ही खिलते हैं।

और मृत्यु से घिरे जगत् में जो जीवन का संगीत जन्मता है--वह शायद प्रेम से ही जन्मता है।

लेकिन, आश्चर्य है तो यही कि अधिकतम लोग विना प्रेम के ही जिये चले जाते हैं।

निश्चय ही उनका जीवन जीवित-मृत्यु ही हो सकता है।

मैं यह जानकर आनंदित हूँ कि तू प्रेम के मंदिर के निकट पहुँच रही है।

प्रेम की गहराइयों में उतर जाना ही प्रार्थना है।

और प्रेम में पूर्णतया खो जाना ही प्रभु को पा लेना है।

रजनीश के प्रणाम

३०-६-१९६८

[प्रति : श्रीमती श्याम दुलारी, बम्बई]

३ / प्रेम शब्दों में कहा भी कहाँ जाता है !

प्यारी दुलारी,

प्रेम। तेरा पत्र मिला है।

पागल ! पत्र में क्या लिखना है, यह बहुत सोचा-विचारा मत कर।

बस जो मन में आया सो लिख दिया।

और कुछ न सूझे तो खाली कागज ही भेज दिया !

मैं तो उसे भी पढ़ लूँगा--वैसे प्रेम शब्दों में कहा भी कहाँ जाता है !

जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, सत्य है, सुन्दर है, वह सभी शब्दों की कैद से मुक्त है।

उसे तो कहना नहीं, **जीना** ही होता है।

और मैं जानता हूँ कि तू जीने की राह पर चल पड़ी है।

शेष मिलने पर।

रजनीश के प्रणाम

१६-७-१९६८

[प्रति : श्रीमती श्याम दुलारी, बम्बई]

४ / प्रेम को प्रार्थना बना

प्यारी पुष्पा,

प्रेम। तेरा पत्र।

पागल ! प्रेम सब पर चाहिए।

किसी एक पर बाँधने की क्या जरूरत है ?

प्रेम जहाँ बँधा, वहीं मोह हो जाता है।

प्रेम जहाँ असीम है, वहीं प्रार्थना बन जाता है।

प्रेम को प्रार्थना बना।

वही प्रेम प्रभु का द्वार है।

रजनीश के प्रणाम

१३-१२-१९६८

[प्रति : कुमारी पुष्पा पंजाबी, (अब मा धर्मज्योति), बम्बई]

५ / प्रेम, प्रार्थना और परमात्मा

प्यारी दुर्गा,

प्रेम। तेरा पत्र पाकर अति आनंदित हूँ।

तेरे जीवन में प्रेम, प्रार्थना और परमात्मा के फूल क्रमशः विकसित होते रहें, यही मेरी कामना है।

प्रेम प्रेम पर रुके तो मर जाता है।

प्रेम को प्रार्थना बनना चाहिए।

और प्रार्थना भी स्वयं पर रुके तो जड़ हो जाती है।

उसे परमात्मा बनना चाहिए।

परमात्मा ही सिर्फ स्वयं पर रुक सकता है।

क्योंकि वह अनादि है, अनंत है।

क्योंकि वह पूर्ण है।

क्योंकि उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

रजनीश के प्रणाम

१५-६-१९६९

[प्रति : श्रीमती दुर्गा, बम्बई]

६ / मेरा प्रेम ही तो मेरा उत्तर है

प्यारी अनसूया,

प्रेम। तेरे सब पत्र यथासमय मिल गये थे।
यह भी मैं जानता हूँ कि तू उत्तर की कितनी प्रतीक्षा करती होगी ?
लेकिन मेरी व्यस्तता तो देखती है न ?
चाहकर भी उत्तर नहीं लिख पाता हूँ।
फिर मेरा प्रेम ही तो मेरा उत्तर है।
और वह तो मैं निरंतर ही भेजता रहता हूँ।
वहाँ सबको मेरे प्रणाम कहना।

रजनीश के प्रणाम

२९-७-१९६९

[प्रति : सुश्री अनसूया, बम्बई]

७ / हृदय की भाषा है–प्रेम

मेरे प्रिय,

पत्र मिला है। आपकी जिज्ञासा से आनंदित हूँ। आप जीवन के प्रत्येक अंग पर सोच-विचार करते हैं, यह अच्छा है। इतना ही स्मरण रखें कि जीवन सोच-विचार मात्र ही नहीं है। उसमें बहुत-कुछ जो बहुमूल्य है, वह बुद्धि से नहीं हृदय से आता है। और हृदय का अपना स्थान है, जो बुद्धि कभी नहीं ले सकती है। बुद्धि के ऊपर हृदय की भाषा भी है। उस भाषा को ही मैं प्रेम कहता हूँ। और वही परमात्मा तक ले जाने की सीढ़ी बनती है।

सबको मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम

१७-१०-१९६९

[प्रति : श्री जयन्ती भाई, बम्बई]

८ / प्रेम में अहंकार और वासना का विसर्जन

प्रिय चंदन,

मैं प्रवास में था। लौटा हूँ तो तुम्हारा पत्र मिला है। आशा थी कि आया होगा। सो आते ही पत्रों के ढेर में सबसे पहले उसे खोजा। यह तुमने क्या लिखा है कि कहीं मुझे पत्रों के लिखने में कष्ट तो नहीं हो रहा है? तुम्हारी जीवन-यात्रा में किंचित् भी सहयोगी हो सकूँ तो मुझे जो आनंद मिलेगा, उसे शब्द देना संभव नहीं है। **प्रेम न तो कष्ट जानता है और न भार। प्रेम तो निर्भार है। आनंद के अतिरिक्त उसकी और कोई अनुभूति ही नहीं है।** क्या मेरे इस प्रेम का तुम्हें अनुभव नहीं होता है? जो मेरे हृदय से पहाड़ी झरनों की भाँति सतत् बहा जाता है, निश्चय ही उसकी प्रतिध्वनियाँ तुम्हारे हृदय को भी तो स्पर्श करती ही होंगी? **भीतर खोजना।** प्रेम का परमात्मा वहाँ सदा ही उपस्थित है। प्रेम के दिव्य आलोक को खोकर ही मनुष्य स्वयं को खो देता है। **मैं आत्मा की, मोक्ष की खोज को मूलतः प्रेम की ही खोज मानता हूँ।** प्रेम के प्रहार में ही अहंकार गलता है और आत्मा उपलब्ध होती है। और प्रेम के प्रहार में ही वासना के बंधन टूटते और मोक्ष के द्वार खुलते हैं।

प्रेम प्रकाश के लिए आमंत्रण है और जो प्रेम के विपरीत चलता है, वह अपने ही हाथों परमात्मा से दूर होता जाता है।

प्रेम या अहंकार——जीवन की दो ही दिशाएँ हैं और परिणाम भी दो ही हैं——मोक्ष या मृत्यु।

प्रेम को खोजो। शेष सब उसके पीछे अपने आप चला आता है। और स्मरण रहे कि प्रेम के दो शत्रु हैं——राग और विराग। **राग और विराग दोनों से उपराम हुए चित्त में प्रेम का जन्म होता है।**

पूना आता हूँ तो तुम्हारे लिए ज्यादा से ज्यादा समय निकालूँगा। उद्विग्नता निश्चित ही मिटेगी। भोर के पूर्व रात्रि का अंधकार गहरा हो ही जाता है।

सबको प्रेम और प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम

४-८-१९६६ (प्रभात)

[प्रति : साध्वी चंदना, पूना]

९ / आनंद—प्रेम की पीड़ा का

प्यारी शोभना,

प्रेम। तेरा पत्र। निश्चय ही विरह में आनंद के साथ-साथ पीड़ा भी है; लेकिन वह पीड़ा भी आनंद है।

प्रेम की पीड़ा से बड़ा और गहरा आनंद और कहाँ हो सकता है?

प्रेम की पीड़ा से गुजर कर सारा व्यक्तित्व ही कुन्दन हो जाता है।

और मैं आनंदित हूँ कि तू उससे गुजर रही है।

००००

कहती है कि मेरे आगे तू बलशाली नहीं रह पाती है?

कमजोर हो जाती है?

शत्रु के सामने बलशाली हुआ जा सकता है।

मेरे सामने कैसे?

क्या मैं तेरा इतना अपना नहीं हूँ कि मेरे सामने तेरे होने की भी जरूरत न रहे?

देखना : अभी कमजोर पड़ती है, फिर **धीरे-धीरे मिट ही जायेगी।**

रजनीश के प्रणाम

२८-६-१९६७ (प्रभात)

[प्रति : सुश्री शोभना, (अब मा योग शोभना), बम्बई]

१० / वृहत्तर मनुष्यता के लिए जीने की विधि और प्रयोग

प्यारी मौनू,

तेरा पत्र। मैं आनंदित हूँ कि तू मात्र जीती ही नहीं, वरन् जीवन पर सोचती भी है। स्वयं पर निरंतर विचार से ही परिष्कार होता है। किन्तु बहुत कम लोग हैं जो सोचते हैं और इसलिए अधिकतर लोग वैसे ही समाप्त होते हैं, जैसे कि पैदा हुए थे।

मनुष्य के चित्त के संबंध में सर्वाधिक जानने योग्य बात यह है कि उसमें बहुत-कुछ समाज का संस्कार है। **व्यक्ति मात्र व्यक्ति ही नहीं है। बहुत-कुछ उसमें समाज है।** और स्वयं में छिपे इस समाज से छुटकारा बड़ी-से-बड़ी कठिनाई है। क्योंकि सामाजिक संस्कारों की यह पर्त व्यक्ति को स्वयं की ही सत्ता मालूम होने लगती है।

प्रेम तेरा असंदिग्ध है। निश्चय ही उसे तुझसे भी ज्यादा मैं जानता हूँ। क्योंकि मैंने उसे पाया है। और ऐसी स्थितियों में पाया है जबकि वह न होता तो उसके होने के भ्रम में बने रहने का कोई भी कारण नहीं था। मैं **जैसा** हूँ, उस व्यक्ति के साथ प्रेम के अभाव में बिना प्रेम के एक क्षण भी बने रहना असंभव था। मेरे अतिरिक्त तो तेरे पास कुछ भी नहीं है। फिर मेरे साथ सिवाय दुःख के और तूने पाया ही क्या है? और तूने स्वयं जान कर मुझे कभी दुःख दिया है, इसका मुझे अनुभव नहीं। अनजाने पहुँचे दुःख से तू ही और पछतायी और दुःखी हुई है।

मैं तुझमें ईर्ष्या भी नहीं पाता हूँ। क्योंकि ईर्ष्या होती तो उसके तो मेरे साथ निरन्तर अवसर थे। उसके होने पर मेरे प्रति तेरा लगाव समाप्त होता और मेरे प्रति घृणा जगती। लेकिन लगाव तेरा बढ़ा है और मेरे प्रति तेरे हृदय में घृणा की तो मैं स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता हूँ। वहाँ तो प्रेम और मंगल-कामना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। उसी प्रेम ने तुझे सब-कुछ सहने का बल भी दिया है। फिर कौन सी बात तुझे कष्ट देती है? **कष्ट दे रहा है चित्त की अचेतन पर्तों में हजारों वर्षों के समाज के संस्कारों का भार।** निश्चय ही निरंतर उससे तू लड़ रही है। और जीत भी रही है। इस दिशा में जो परिवर्तन तूने किया है, वह कोई दूसरा तेरी जगह नहीं कर सकता था। क्योंकि किसी दूसरे का ऐसा और इतना प्रेम मेरे प्रति नहीं है कि वह उसके लिए स्वयं को बदलने को राजी हो जावे। **किसीके लिए मरना आसान है, लेकिन स्वयं को बदलना बहुत कठिन है।** मरने में तो फिर भी अहं की तृप्ति है। बदलने में तो अहंकार बिलकुल ही जाता है।

और जहाँ गहरा और सच्चा प्रेम है, वहीं अहंकार की कुर्बानी की जा सकती है। तूने वह किया है और निरंतर कर रही है।

यह भी मैं जानता हूँ कि **प्रेम के संबंध में मेरी दृष्टि अत्यधिक असामान्य है और उसके लिए मनुष्य को तैयार होने में हजारों वर्ष लगेंगे।** इसलिए मेरे साथ जिसे प्रेम को जीना पड़ रहा है, उसकी कठिनाई को मैं जानता हूँ। और इसलिए तेरे प्रति मेरे हृदय में कैसी सराहना है, उसे कहा नहीं जा सकता है। तेरे परिवर्तन और चित्त में आ रहे हल्केपन को देखकर मुझे आशा भी बँधती है कि कभी-न-कभी अधिकतम मनुष्य भी यह कर सकेंगे। जिस दिन प्रेम की रूढ़िबद्ध धारणाओं से तुझे पूर्णतया मुक्त देखूँगा, उस क्षण मेरे समक्ष मनुष्य-चित्त क्या कर सकता है, इसकी भी मुझे गवाही मिल जायेगी।

मेरा जीवन स्वयं का जीना मात्र ही नहीं है। वह वृहत्तर मनुष्यता के लिए जीने की विधि और प्रयोग भी है। और **जो मेरे हैं और मेरे साथ हैं, उन्हें बहुत सी अग्नियों में से गुजरना है।** हो सकता है मैं पागल ही होऊँ और जो कहता और जीता हूँ, वह सब गलत ही हो; फिर भी मैं प्रयोग तो करूँगा ही, परिणाम ही उसकी सच्चाई या झूठ को प्रमाणित कर सकते हैं। यह बात निश्चित है कि प्रेम के प्रति मनुष्य की प्रचलित धारणा जरूर कहीं गलत है, क्योंकि वह सिवाय दुःख के और कुछ भी नहीं लाती है। उसकी असफलता तो दुःख है ही, उसकी सफलता भी दुःख है। इसलिए प्रेम की नयी दृष्टि तो मनुष्य को खोजनी ही होगी। यदि मेरे विचार उस दिशा में कुछ भी प्रकाश डाल सकें तो भी बहुत है। यदि वे गलत ही सिद्ध हों तो भी वे किसी और दिशा में ही सही, लेकिन विचार के लिए जागरण का कारण तो बन ही सकेंगे।

जहाँ तक मेरा संबंध है, मैं स्वयं के दर्शन के ठीक होने में आश्वस्त हूँ, क्योंकि वह तो मेरे चित्त को अत्यधिक शांति और आनंद और प्रेम से भर रहा है। **तू इन सारे प्रयोगों में मेरा साथ दे रही है। तेरा अनुग्रह मानूँ?** क्योंकि जो मेरे लिए आनंद है, वह तो तेरे लिए मेरे प्रेम के कारण ही करना पड़ रहा है; लेकिन एक बात जान रख कि एक दिन वह तेरे लिए भी आनंद का कारण बनेगा। और क्या कहूँ? जितनी तू शांत और सरल और संस्कार-मुक्त होगी, उतना ही मेरा विचार तेरे समक्ष स्पष्ट होगा। एक दिन तू निश्चय ही जानेगी कि मेरे हृदय में तेरे लिए क्या है!

तेरा अपना
रजनीश

[प्रति : सुश्री मौनू (क्रान्ति), जबलपुर]

११ / मात्र जिये जाता हूँ

प्रिय जयंतीभाई,

प्रेम ।

आपका पत्र पाकर आनंदित और अनुगृहीत हूँ ।

अभी तो ऐसा ही चल रहा है कि जितनी अपनी शक्ति और श्रम से संभव है, उतना कर रहा हूँ ।

जीवन किसी भी भाँति सर्वहित में काम आ जावे तो वही मेरी कृतार्थता होगी ।

पर जैसा आपने लिखा है : कुछ सोचना होगा । अत्यधिक व्यस्तता और प्रवास हानि तो पहुँचा ही रहा है । फिर आप सबके प्रेम को स्मरण करता हूँ तो ख्याल आता है कि परमात्मा उसके द्वारा कोई मार्ग भी निकाल ही लेगा ।

वैसे अपनी ओर से तो मात्र जिये जाता हूँ और जो बनता है वह किये जाता हूँ ।

वहाँ सबको मेरे प्रणाम कहें ।

अब तो जल्दी ही आप सब मिलने को हैं ।

महेन्द्र और अनूपभाई कैसे हैं ?

रजनीश के प्रणाम

२१-१-१९६६

[प्रति : जयंतीभाई, बम्बई]

१२ / सत्य स्वयं ही अपने सैनिक चुन लेता है

प्रिय जयंतीभाई,

आपका प्रेमपूर्ण पत्र और चित्र मिले हैं ।

मैं आपको पराया कब मानता हूँ ?

आप ही पराये होंगे तो अपना किसे कहूँगा ? निश्चय ही आपकी शक्ति को मुझे काम में लेना ही होगा । फिर यह काम 'मेरा' तो है नहीं । है तो परमात्मा का ही । वही आपको भी प्रेरणा दे रहा है । अन्यथा मेरी क्या बात है ? इस बार आता हूँ तो आपसे बात करूँगा । **निश्चय ही प्रभु की इच्छा है कि कुछ हो ।** उस इच्छा में उपकरण बनना है । बहुतों को अपना श्रम और शक्ति देनी होगी । किन्तु मैं स्वयं किसी से कुछ भी नहीं कह सकता हूँ । यदि कार्य होता है तो इनमें स्वयं ही प्रेरणा पैदा होगी । सत्य स्वयं ही अपने सैनिक चुन लेता है ।

वहाँ सबको मेरा प्रेम कहें ।

रजनीश के प्रणाम

२७-१-१९६६

[प्रति : श्री जयंतीभाई, बम्बई]

१३ / परिस्थिति नहीं—मनःस्थिति का परिवर्तन करें

परम प्रिय,

प्रेम। आपका पत्र मिले देर हो गयी है।

मैं प्रवास में था और कल ही वापस लौटा हूँ।

माथेरान-शिविर में जरूर ही आपकी प्रतीक्षा की।

२५, २६, २७ दिसंबर को हो रहे चिखलदरा-शिविर में आ जावें तो वहीं आपकी समस्याओं पर भी बात हो सकेगी और ध्यान के प्रयोग से उनके समाधान का मार्ग भी स्पष्ट हो सकेगा।

ध्यान से चित्त शांत होगा और शांति से शक्ति और आत्मविश्वास उत्पन्न होते हैं।

जैसी परिस्थितियाँ रही हैं, उनसे अशांत और निराश हो जाना स्वाभाविक ही है। लेकिन, फिर भी **मनःस्थिति** बदली जा सकती है।

और उसका परिवर्तन पूरे जीवन को ही बदल देता है।

और जैसा मैंने आपको जाना है, उसके आधार पर आश्वस्त हूँ कि **वह परि-वर्तन सहज ही हो सकता है।**

वहाँ सबको मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम

१-११-१९६६

[प्रति : श्री पन्नालाल गंगवाल, श्री पार्श्वनाथ ब्रह्मचर्याश्रम (गुरुकुल), एलोरा, (महाराष्ट्र)]

१४ / चाहिए संकल्प—श्रम, धैर्य और प्रतीक्षा

प्रिय वसुजी,

प्रेम।

तुम्हारा पत्र पाकर आनंदित हूँ।

मैंने उस प्यास को तुम्हारी आँखों में अनुभव किया है, जो कि प्रार्थना बन सकती है और उस खोज की भी पगध्वनि सुनी है जो कि परमात्मा के मंदिर तक ले जाने में समर्थ है।

लेकिन संकल्प चाहिए और सतत् श्रम और धैर्य और प्रतीक्षा।

बीज तो है और उसे वृक्ष बनाया जा सकता है।

परमात्मा शक्ति दे, यही कामना है।

वहाँ सबको मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम

२-११-१९६६

[प्रति : सुश्री वसुमति शाह, बम्बई]

१५ / अब तो सबकी व्यथा ही मेरी व्यथा बन गयी है

प्यारी चंदन,

प्रेम। पत्र मिला है।

'मेरी व्यथा' का अर्थ **मेरी** व्यथा नहीं है––मेरा ही अब जब कुछ नहीं है तो मेरी व्यथा तो हो ही कैसे सकती है?

आह! अब तो **सबकी** व्यथा ही मेरी व्यथा बन गयी है।

और अब तू उस व्यथा की तीव्रता और विस्तार को समझ सकती है।

वहाँ सबको मेरे प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम

५-२-१९६८

[प्रति : सुश्री चंदन, बम्बई]

१६ / जीवन एक न सुलझने वाली–सुलझी हुई पहेली

प्यारी शोभना,

प्रेम। क्या तुझे पता नहीं है कि ऐसी मुक्ति भी है जो बंधन है और ऐसे बंधन भी हैं जो कि मुक्ति हैं? क्या तूने ऐसे सत्य नहीं देखे जो कि स्वप्न हैं और ऐसे स्वप्न नहीं देखे जो कि सत्य हैं?

जीवन इसलिए ही तो पहेली है।

और पहेली वह नहीं है जो कि सुलझ जाये––पहेली तो वही है जो कि सुलझ ही न सके, क्योंकि वस्तुत तो वह सुलझी ही हुई है!

जैसे कि सोये हुए को जगाया जा सकता है, लेकिन जो जागा ही हुआ है, उसे कैसे जगाया जा सकता है?

जैसे कि बंद द्वार खोले जा सकते हैं, लेकिन जो द्वार खुले ही हैं वे कैसे खोले जा सकते हैं?

मैं तुझे जरूर ऐसी पहेली दूँगा जो कि इसीलिए पहेली है कि पहेली नहीं है।

प्रेम और क्या है?

प्रभु और क्या है?

मैं तुझे ऐसे बंधन दूँगा जो कि मुक्ति हैं और ऐसे स्वप्न जो कि सत्य हैं।

प्रेम और क्या है?

प्रभु और क्या है?

और, तू पूछती है कि कविता क्या है?

रजनीश के प्रणाम

६-३-१९६८

[प्रति : सुश्री शोभना (अब मा योग शोभना), बम्बई]

१७ / तेरे ही हाथों में तेरा भाग्य है

प्यारी निर्मल,

प्रेम । तेरा पत्र । पगली ! तू व्यर्थ ही कष्ट झेल रही है ।
आकाश के तारों में नहीं, तेरे ही हाथों में तेरा भाग्य है ।
और तू जब चाहे तब बदलाहट ला सकती है ।
अभी तो इतना ही कर कि दो-तीन माह के लिए कमला के पास आ जा ।
स्वास्थ्य पर ध्यान दे ।
और मन को शांत कर ।
एक बार तू शांत होकर कोई भी निर्णय लेने की स्थिति में आ सके, यही बस जरूरी है ।
फिर तू जो भी निर्णय लेगी, वही शुभ होगा ।
मैं जानता हूँ कि तू दुःख के बाहर होने के करीब है ।
लेकिन तुझे ही कुछ करना होगा ।
और परमात्मा तो सदा उनके साथ है जो कि स्वयं के साथ हैं ।
मैं ४, ५, ६ मई पूना ोल रहा हूँ ।
यदि संभव हो तो कमला को लेकर वहाँ आ जा ।
संभव है कि मेरा प्रेम कुछ कर सके ।
वहाँ सबको मेरे प्रणाम ।
कमला को प्रेम ।

रजनीश के प्रणाम
५-४-१९६८

[प्रति : सुश्री निर्मल, बम्बई]

१८ / व्यक्तित्व की सुवास

प्यारी चन्दन,

प्रेम । तेरा पत्र और तेरे सुवासित शब्द ।
तू सच ही चन्दन है और तेरी रोज बहती सुवास में आनंदित हूँ ।
जल्दी ही तू मिट जावेगी और फिर बस 'सुवास' ही रह जायेगी ।
वही प्रभु मिलन है ।

रजनीश के प्रणाम
१४-४-१९६८

[प्रति : सुश्री चंदन, बम्बई]

१९ / आमूल जीवन-क्रांति को मैं संन्यास कहता हूँ

प्रिय पुष्पा,

प्रेम। तेरा पागलपन से भरा हुआ पत्र मिला है।

मैं संन्यास के विरोध में नहीं हूँ।

लेकिन, वस्त्र या बाह्य स्थिति-परिवर्तन को नहीं, वरन् आमल जीवन-क्रांति को संन्यास कहता हूँ।

वैसे संन्यास को खोज।

वह संन्यास ही प्रभु की खोज बन सकता है।

लेकिन जो वस्त्र बदल लेने को या इसी तरह की और गौण और दो कौड़ी की बातों को ही संन्यास मान लेते हैं, वे ऐसा वास्तविक संन्यास से बचने के लिए ही करते हैं।

इसलिए तो संन्यासियों में संन्यासी का मिलना दुर्लभ हो गया है।

मैं जब अगस्त में आऊँ तब मिल।

इस बार तुझसे विशेष रूप से बात कर सकूँगा।

शेष शुभ।

वहाँ सबको प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम

१९-७-१९६८

[प्रति : कुमारी पुष्पा पंजाबी, (अब मा धर्मज्योति), बम्बई]

२० / अनंत और स्वयं क बीच बाधा—मैं की मूर्च्छा

प्यारी शोभना,

प्रेम।

'मैं' ही है किनारा—वही है बंधन—वही है बाधा अनंत और स्वयं के बीच।

दुःख भी वही है और दुःख का कारण भी।

और प्रत्येक निर्णय से वह मजबूत होता है।

उसे मिटाने के निर्णय से भी!

वस्तुतः जीवन के समस्त निर्णयों का जोड़ ही तो वह है।

उसे मिटाने—उससे मुक्त होने में यही तो कठिनाई है। संकल्प (Will) से वह नहीं मिट सकता है।

इसलिए, सिर्फ समझ उसे।

समझ कि वह क्या है?

पूछ : **मैं कौन हूँ?**

पूछ : **मैं क्या हूँ?**

पूछ : **मैं कहाँ हूँ?**

उत्तर?

उत्तर नहीं है।

'मैं' है ही नहीं—तो उत्तर कैसा?

किन्तु, अनुत्तर मौन ही क्या उत्तर नहीं है?

शून्य है उत्तर।

उस शून्य में बस वही है, "जो है"।

फिर शोभना नहीं है—तट नहीं है—बस सागर है।

सागर और सागर और सागर।

और क्या तू सुन नहीं रही है कि सागर तुझे बुला रहा है।

आ! आ! आ!

रजनीश के प्रणाम

१७-८-१९६८

[प्रति : सुश्री शोभना (अब मा योग शोभना), बम्बई]

२१ / शरीर और इंद्रियों से परे—हृदय के स्वर

प्यारी शोभना,

प्रेम । तेरा पत्र मिला है——अभी-अभी ।

मैं बहुत-से पत्र लिख कर बैठा था ।

पोस्ट स्टाम्प नहीं थे और किसी के आने की प्रतीक्षा कर रहा था, ताकि पोस्ट ऑफिस से उन्हें मँगाया जा सके ।

और तू है कि अचानक ही ढेर-सारे स्टाम्प लेकर आ गयी है !

देख ! इसे ही कहते हैं न चमत्कार !

आह ! और तेरा वह पत्र जो कि तूने साथ में नहीं भेजा है !

मैं उसे पढ़ता हूँ और वह है कि पूरा होता ही नहीं है ।

लिखा हुआ तो चुक जाता है, लेकिन अनलिखा चुके भी तो कैसे ?

शब्द जहाँ नहीं हैं, वहाँ भी तो हृदय कुछ कहना चाहता है । और शरीर जहाँ स्पर्श को नहीं है, वहाँ भी तो हृदय कुछ स्पर्श करना चाहता है ।

तू वहीं मुझे स्पर्श कर रही है ।

और तू वही मुझसे कह रही है जो कि कहा नहीं जा सकता है ।

लेकिन आश्चर्य तो यही है कि जो नहीं लिखा जा सकता वह भी पढ़ा जा सकता है और जो नहीं कहा जा सकता, वह भी सुना जा सकता है ।

क्योंकि, अभिव्यक्ति मनुष्य की सीमित है, लेकिन अनुभूति तो असीम है ।

रजनीश के प्रणाम

१०-९-१९६८

[प्रति : सुश्री शोभना (अब मा योग शोभना), बम्बई]

२२ / मैं—'मेरे' नहीं—सत्य के मित्र चाहता हूँ

मेरे प्रिय,

प्रेम । आपके कृपा-पत्र को पाकर अनुगृहीत हूँ ।

मैं किसी व्यक्ति के विरोध में नहीं हूँ ।

लेकिन, उन सिद्धान्तों के जरूर विरोध में हूँ, जिनसे राष्ट्र का अहित हुआ है और हो रहा है ।

ऐसे सिद्धान्तों की तीव्र आलोचना आवश्यक है ।

क्योंकि उस आलोचना के द्वारा ही देश की मनीषा को चिंतन के लिए विवश किया जा सकता है ।

इससे मेरा विरोध होगा । निश्चय ही ।

लेकिन, वह हो यह मैं चाहता हूँ ।

सत्य सदा विजयी होता है ।

और जो मैं कह रहा हूँ, वह यदि सत्य नहीं है तो उसकी पराजय उचित है ।

कौन मित्र मुझे छोड़ देंगे इसकी चिन्ता न करें ।

मैं 'मेरे' नहीं, सत्य के मित्र चाहता हूँ ।

वहाँ सबको मेरे प्रणाम कहें ।

रजनीश के प्रणाम

१३-११-१९६८

[प्रति : श्री लहरचंद शाह, बम्बई]

२३ / प्यास ही प्रार्थना है

प्यारी चन्दन,

प्रेम। तुम्हारा पत्र पाकर अत्यधिक आनंदित हूँ।

सत्य की ऐसी प्यास सौभाग्य है, क्योंकि जो ऐसी तीव्रता और उत्कटता से प्यासे होते हैं वे हीं केवल उसे उपलब्ध कर पाते हैं।

प्राणों की परिपूर्ण प्यास के अतिरिक्त उसे पाने का और कोई मार्ग भी तो नहीं है।

इसलिए ही तो मैं कहता हूँ प्यास ही प्रार्थना है और प्यास ही उसकी प्राप्ति है।

परमात्मा के सर्वाधिक निकट कौन है ?

वे ही जो उसकी प्यास में पागल हो गये हैं और जिनकी आँखों में उसकी प्यास के अतिरिक्त और कुछ भी शेष नहीं बचा है।

और मैं जानता हूँ कि ऐसी ही घटना तुम्हारे प्राणों में भी घट रही है।

और मैं उसका साक्षी हूँ।

वहाँ सबको मेरे प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम

३१-११-१९६८

[प्रति : सुश्री चंदन, बम्बई]

२४ / 'मैं' तो मिट ही गया हूँ

प्यारी कमला,

प्रेम। तेरा पत्र पाकर अति आनंदित हूँ।

मेरी आँखों में जो तुझे दिखायी पड़ा है, वह 'मैं' तो निश्चय ही नहीं हूँ।

'मैं' तो मिट ही गया हूँ।

अब तो बस **वही** है, जो वस्तुतः है।

और **उसने** ही तुझे आकर्षित किया है।

उसके रास्ते अनूठे हैं।

उसके बुलावे भी अद्‌भुत्‌ हैं।

उसकी पुकार सुन। उसे खोज।

मेरी याद को **उसकी** ही याद बना।

उसकी तुझ पर कृपा हो।

और और कृपा हो यही मेरी कामना है।

परिवार में सबको मेरे प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम

१२-१२-१९६८

[प्रति : श्रीमती कमला छाबरिया, बम्बई]

२५ / स्त्रियों में विद्रोही आत्मा के जागरण की आवश्यकता

प्यारी पुष्पा,

प्रेम । तेरा पत्र मिला है ।

सलु के लिए मैं भी चिंतित हूँ ।

स्त्रियों की स्थिति साधारणतः अच्छी नहीं है ।

पुरुषों का शोषक व्यवहार तो जिम्मेवार है ही ।

लेकिन स्त्रियाँ भी उतनी ही दोषी हैं ।

वे शोषण होने देती हैं ।

उनमें विद्रोह चाहिए ।

विद्रोह की चिनगारी जब तक उनमें नहीं है, तब तक उनका व्यक्तित्व, उनकी आत्मा ठीक से प्रकट नहीं हो सकती है ।

यह विद्रोह भी प्रेमपूर्ण हो सकता है ।

सच तो यह है कि जहाँ विद्रोही आत्मा नहीं है—स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं है, वहाँ प्रेम की संभावना भी क्या है ?

तथाकथित दाम्पत्य स्थायी वेश्यागिरी हो गया है ।

स्त्रियों को वेश्या बनने से इनकार करना है ।

सुरक्षा का अति आग्रह यह नहीं होने देता है ।

मैं जब आऊँगा, तब बात करूँगा ।

स्त्रियों को संगठित कर तो बहुत बातें की जा सकती हैं ।

सलु को मेरा प्रेम ।

उससे कहना : पत्र लिखे । कैसी भी—टूटी-फूटी भाषा में ही सही ।

रजनीश के प्रणाम

२३-१२-१९६८

[प्रति : कुमारी पुष्पा पंजाबी (अब मा धर्मज्योति), बम्बई]

२६ / अनित्य पर ही ध्यान रखना है

प्यारी वसु,

प्रेम । मैं बंगाल और विदर्भ के प्रवास में था ।

पत्र तो तेरा प्रवास में ही मिल गया था ।

लेकिन प्रत्युत्तर जल्दी नहीं दे सका ।

क्षमा करना ।

तू प्रतीक्षा कर रही होगी और उत्तर न पाकर नाराज हो रही होगी ।

वैसे कभी-कभी नाराज होना भी अच्छा ही होता है ।

उससे भी प्रेम का ही पता चलता है !

मैं ३० जन० को पहुँच रहा हूँ ।

तू मिलेगी ही तो बातें हो सकेंगी ।

उदास तू व्यर्थ ही है ।

जीवन जैसा है, उसकी आनंदपूर्ण स्वीकृति चाहिए ।

यही साधना है ।

कुमारिल अब कैसे हैं ?

मैं आशा करता हूँ कि वे अब ठीक होंगे ।

बीमारी और स्वास्थ्य, रात और दिन, मृत्यु और जन्म, दुःख और सुख आते हैं और जाते हैं ।

जो न आता है, न जाता है, उस पर ही ध्यान रखना है । वही है । बस वस्तुतः वही है ।

वहाँ सबको मेरे प्रणाम ।

रजनीश के प्रणाम

२४-१-१९६९

[प्रति : श्रीमती वसुमती शाह, बम्बई]

२७ / परिचय—विगत जन्मों का

प्यारी दर्शन,

प्रेम। तेरा पत्र पाकर अति आनंदित हूँ।
निश्चय ही तेरा परिचय नया नहीं है।
पुराना है—अति पुराना—विगत जन्मों का।
और तेरा स्मरण ठीक है।
ध्यान में उतरेगी तो स्मरण और भी स्पष्ट होगा।
मैं १९ जुलाई को बम्बई आ रहा हूँ।
तब तू मिल।
शेष मिलने पर।
वहाँ सबको मेरे प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
१५-६-१९६९

[प्रति : कुमारी दर्शन, बम्बई]

२८ / सार्थक संवाद—निःशब्द में ही

प्यारी दर्शन,

प्रेम। तेरा पत्र पाकर कितना आनंदित हूँ? कैसे कहूँ?
उसकी प्रतीक्षा रोज ही करता था।
पर कितना छोटा-सा पत्र लिखा है?
फिर भी जो तूने छोड़ दिया है, वह भी मैंने पढ़ लिया है।
पंक्तियों के बीच में भी तो सदा बहुत-कुछ छिपा रहता है!
या कि वहीं छिपा रहता है!
शब्द कभी कहते हैं, पर अधिकतर तो छिपाते ही हैं।
शब्द की सीमा है।

और जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, सत्य है, सुन्दर है, वह सभी उस सीमा के बाहर है।

प्रेम भी। प्रार्थना भी। परमात्मा भी।
शब्द है मृत और इसलिए जीवन सदा ही निःशब्द है।
लेकिन मृत में भी जीवन का प्रतिपालन हो सकता है।
वह भी जीवन का दर्पण तो बन ही सकता है।
और ऐसा जब भी होता है, तभी काव्य का जन्म हो जाता है।
फिर शब्द निःशब्द के इंगित हो जाते हैं।
शब्द का तू उपयोग कम ही करती है।
अनेक बार तो वे तेरे ओंठों के कंपन मात्र होकर रह जाते हैं।
और बहुत-कुछ तो तेरे ओंठों तक भी नहीं आ पाता है।
शायद हृदय की धड़कनों में ही खो जाता है।

और ऐसी तरंगों का भी मैंने अनुभव किया है, जिन्हें कि तेरा हृदय भी नहीं जान पाता है।

वे तेरे अस्तित्व के मूल-स्रोत की ही तरंगें हैं।
एक कवि है तेरे भीतर—और वह जन्म लेने को बहुत आकुल-आतुर है।

और कौन जानता है कि शायद उसके लिए मुझे दाई बनना पड़े ?

शेष शुभ ।

वहाँ सबको प्रणाम ।

मैं बम्बई आता हूँ तब किसी दिन दोपहर आकर मिल जाना ।

रजनीश के प्रणाम

२१-११-१९६९

[प्रति : श्रीमती दर्शन वालिया, बम्बई]

२९ / स्वीकार-भाव

प्यारी धर्मिष्ठा

प्रेम । तेरे पत्र ।

जो हो, उसे स्वीकार-भाव से देख ।

वेदना और दुःख को भी स्वीकार कर और देख ।

उपस्थिति (Presence) का मुझे पता है, पर अब वह भी हित में है।

कुंडलिनी जाग रही है, इसलिए जहाँ तक बन सके कोई दवा मत लेना ।

अच्छा हो कि जूनागढ़ आकर मिल जा ।

चाहे थोड़ी देर को ही सही ।

बाबूभाई भी आ सकें तो बहुत अच्छा ।

और मैं तो सदा साथ हूँ ही ।

वहाँ सबको प्रणाम ।

बाबूभाई को प्रेम । न मालम क्यों——बाबूभाई की याद मुझे बहुत आती है ।

लगता है कि मेरे कार्य में ही अंततः उनका पूरा जीवन लगने वाला है ।

रजनीश के प्रणाम

२-१२-१९६९

[प्रति : सुश्री धर्मिष्ठा शाह (अब मा आनंद मधु), संस्कार तीर्थ, आजोल, गुजरात]

३० / जड़-मूल से सब बदल डालना है !

मेरे प्रिय,

मैं यह जान कर अति आनंदित हूँ कि आप "सिंहनाद' का प्रकाशन प्रारंभ कर रहे हैं।

जीवन की प्रत्येक दिशा में सिंहनाद की आवश्यकता है।

जड़मूल से सब बदल डालना है।

मनुष्य अब तक जिस भाँति जिया है, वह मूलतः गलत था।

इसलिए पुराने मनुष्य को विदा देनी है और नये मनुष्य के जन्म के आधार रखने हैं।

मैं आशा करता हूँ कि "सिंहनाद" इस महत् कार्य में पहल करेगा।

मैं और मेरी शुभ कामनाएँ सदा आपके साथ हैं।

रजनीश के प्रणाम

१०-१२-१९६९

[प्रति : श्री नटुभाई मेहता, सुरेन्द्रनगर]

३१ / मन---एक असहजता

प्रिय मधु,

प्रेम। तेरा पत्र मिला है।

तेरे आनंद से मैं भी आनंदित हूँ।

जीवन सहज है।

लेकिन मनुष्य का मन सहज नहीं है।

इसलिए मन और जीवन का मेल कहीं भी नहीं हो पाता है।

जहाँ मन है वहाँ जीवन नहीं है।

इसलिए मन की कोई भी चेष्टा जीवन तक नहीं पहुँचती है।

किंतु इस सत्य के दर्शन के साथ ही मन गिर जाता है।

और फिर तो है वही जीवन है।

जहाँ मन नहीं है वहीं जीवन है।

मन है अनुभव का संग्रह, मन है स्मृति।

अर्थात् मन सदा अतीत है और मृत है।

वह उस सबका संग्रह है जहाँ से कि जीवन निकल चुका है।

मन वह केंचुली है जिसे कि जीवन का साँप प्रतिपल पीछे छोड़ देता है।

और मनुष्य इस केंचुल में ही उलझा रहता है।

यह देख कर कि तू इस केंचुली से मुक्त हो रही है, मैं बहुत आनंदित हूँ।

बाबूभाई को प्रेम।

सबको प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम

१२-१-१९७०

[प्रति : सुश्री मधु (धर्मिष्ठा शाह), (अब मा आनंद मधु), संस्कार-तीर्थ, आजोल, गुजरात]

३२ / जीवन है अनंत रहस्य

प्यारी मधु,

प्रेम । तेरे पत्र मिल गये हैं ।
बिना पत्रों के ही उत्तर देने की कोशिश करता हूँ ।
उत्तर तुम तक पहुँच भी जाते हैं ।
लेकिन, अभी तू समझ नहीं पाती है ।
जीवन है अनंत रहस्य ।
जैसे अज्ञात सागर में एक अनाम द्वीप है ।
और तू उस द्वीप के रोज निकट आती जा रही है ।
मैं इससे बहुत आनंदित हूँ ।
जो भी हो, उसे लिख दिया कर ।
बाबभाई बेहोश ही नहीं थे ।
वे गहरे ध्यान में चले गये थे ।
इसलिए ही डाक्टर कारण समझ नहीं पाये ।
उनकी यात्रा भी तीव्रता से चल रही है ।
संभव है कि वे तुझ से पहले ही पहुँच जावें ।
शेष शुभ ।

वहाँ सबको प्रणाम ।

रजनीश क प्रणाम
५-२-१९७०

[प्रति : सुश्री मधु शाह, (अब मा आनंद मधु), संस्कार-तीर्थ, आजोल, गुजरात]

३३ / भोग और दमन के बीच में द्वार है—जागरण का

प्रिय धर्मज्योति,

प्रेम । चित्त को कभी भी दबाना मत ।
दमन (Repression) रोग है ।
और जो दबाया जाता है, वह कभी भी मिटता नहीं है ।
वह लौट-लौट कर आक्रमण करता है ।
चित्त को समझना है ।
अंततः चित्त की समझ ही सुलझाव बनती है ।
दमन तो मात्र रोगों का स्थगन (Post Ponment) है ।
न भोग में मार्ग है, न दमन में मार्ग है ।
मार्ग है ज्ञान (Understanding) **में ।**
इसलिए, स्वयं के चित्त को उसके समग्र रूपों में जान ।
होश से जी ।
जाग्रत जी ।
फिर जो व्यर्थ है, वह अपने आप ही विसर्जित हो जाता है ।
और उसकी ऊर्जा (Energy) सार्थक में रूपान्तरित हो जाती है ।
अन्यथा हम स्वयं के साथ ही दुष्ट-चक्र (Vicious circle) पैदा कर लेते हैं ।
एक तथाकथित संत एकांत में धूनी रमाये बैठे थे ।

एक व्यक्ति उनकी परीक्षा के लिए आया और उसने कहा : "बाबाजी, धूनी में कुछ आग है ?"

संत ने कहा : "इसमें आग नहीं है ।"

उसने कहा : "कुरेद कर देखिये, शायद आग हो ?"

संत ने त्यौरियाँ चढ़ा कर कहा : "मैंने तुमसे कह दिया इसमें आग नहीं ।"

उस व्यक्ति ने फिर झिंझोड़ा : "बाबाजी, कुछ चिनगारियाँ तो जरूर हैं ?"

संत ने अपना चिमटा ठोकते हुए कहा : "कैसा मूर्ख है तू ?"

लेकिन उस व्यक्ति ने फिर भी कहा : "बाबाजी, मुझे तो कुछ चिनगारियाँ दिखाई देती हैं ?"

संत ने कहा : "तो क्या मैं अंधा हूँ ?"

वह व्यक्ति बोला : "अब तो कुछ लपट भी उठती दिखाई देती है ?"

फिर तो संत ने होश खो दिया ।

उनकी आँखें चिनगारियों से भर गयीं और उनकी वाणी लपटों से । वे अपना चिमटा लेकर उसे मारने को दौड़ पड़े ।

भागते-भागते उस व्यक्ति ने कहा : "बाबाजी, देखिये अब तो अग्नि पूरी ही तरह भड़क उठी है !"

दबायी हुई अग्नि ही भड़क सकती है ।

और दबायी हुई अग्नि कभी भी भड़क सकती है ।

दमन स्वयं से ही दुश्मनी है ।

और स्वयं को ही धोखा भी ।

भोग और दमन के बीच में द्वार है—शांति का, मुक्ति का, शक्ति का, सत्य का, समाधि का ।

उस द्वार को खोज ।

रजनीश के प्रणाम

७-९-१९७०

[प्रति : मा धर्मज्योति, बम्बई]

३४ / सत्य को जानने और पचाने की भी पात्रता चाहिए

प्यारी मौनू,

प्रेम । सत्य तो सदा है ।

लेकिन खोजने वाले की पात्रता न हो तो सत्य के सदा होने से क्या फर्क पड़ता है ।

पात्रता के आते ही सत्य प्रकट हो जाता है ।

द्वार के खुलते ही जैसे सूर्य भीतर आ जाता है ।

आँखे हैं—सूर्य है; लेकिन द्वार बंद है; इसलिए अँधेरा है । अंधकार हमारा ही निर्माण है ।

अज्ञान के लिए हम ही आधार हैं ।

सत्य को जानने और पचाने की भी पात्रता चाहिए ।

असमय में मिले सत्य को पचाना भी कठिन है ।

रूमी ने एक कहानी कही है :

एक मुरीद बहुत दिनों से पीर के पीछे पड़ा हुआ था कि दुःखों से छूटने का गुर बता दीजिये ।

अंत में एक दिन पीर ने कहा : "बहुत ही आसान गुर है । जो आदमी कहे कि मैं सबसे अधिक सुखी हूँ, उसका अंगरखा उतरवा कर पहन लो ।"

फिर क्या था—मुरीद निकल पड़ा सुख की खोज में ।

मगर हर सुखी आदमी के मुँह से उसे यही सुनने को मिलता कि मुझसे तो ज्यादा फलाँ आदमी सुखी है ।

वर्षों इसी तरह भटकने के बाद किसी के कहने से वह एक फकीर के पास पहुँचा, जो मुँह पर अंगोछा डाले एक खजूर-वृक्ष के नीचे बैठा था ।

मुरीद के पूछने पर फकीर ने कहा : "हाँ मैं सबसे ज्यादा सुखी हूँ ।"

निराश मुरीद की आत्मा में आशा के फूल खिले । उसने फकीर के पैर चूमते हुए प्रार्थना की—"बाबा, अपना अंगरखा मुझे दे दीजिये ।"

लेकिन फकीर हँसा और बोला : "मगर देखो तो बेटा, मेरे बदन पर अंगरखा है क्या ?"

और उसने अपने मुँह पर से अंगोछा हटा दिया ।

यह तो वही पीर था--सुख का गुर बताने वाला गुरु ।

और उसका शरीर उघाड़ा था--अंगरखा था ही नहीं ।

जैसे अचानक बिजली कौंध जाये--ऐसा ही मुरीद के भीतर कुछ कौंध गया ।

जैसे अकस्मात् अँधेरे में दिया जल जाये--ऐसे ही **मुरीद के भीतर कोई अनजला दिया जल गया ।**

वह बोला : "मगर बाबा, यह बात आपने पहले ही क्यों न समझायी ?"

उत्तर मिला : "बेटे, तब तुम्हारी समझ में न आती । बरसों की मेहनत ने तुम्हें सत्य को पचाने-योग्य बना दिया है ।"

रजनीश के प्रणाम

१७-९-१९७०

[प्रति : सुश्री मौनू (क्रांति), जबलपुर, म० प्र०]

३५ / चुप हो--और जान

प्रिय धर्मज्योति,

प्रेम । **पल-पल परमात्मा पुकार रहा है ।**

लेकिन, मन हमारा स्वयं में ही व्यस्त है ।

अव्यस्त हुए बिना उसकी आवाज सुनाई नहीं पड़ सकती है ।

अव्यस्त-चित्त ही ध्यान है ।

शून्य--मौन--निःशब्द होते ही उसके स्वर प्राणों को आपूरित कर देते हैं ।

चुप हो--और जान ।

एक तार-ऑफिस में वायरलेस क्लर्क की नौकरी के लिए बहुत-से उम्मीदवारों को बुलाया गया था ।

ऑफिस के बाहर एक बड़ी पंक्ति में खड़े वे अपने बुलाये जाने की प्रतीक्षा कर रहे थे ।

लेकिन, वह प्रतीक्षा मौन तो नहीं थी ।

बातें चल रही थीं और वे सब बाहर या भीतर अपने-अपने विचारों में डूबे थे । और , तभी सबसे अंत में खड़ा व्यक्ति पंक्ति से निकल तार-ऑफिस में चला गया । शायद, उसे जाते भी किसीने नहीं देखा ।

उसे तो देखा लोगों ने तब, जब वह नियुक्ति-पत्र लेकर बाहर आया और बोला : "जिस नौकरी के लिए यह विज्ञापन दिया गया था, वह मुझे मिल गयी है, इसलिए अब आप व्यर्थ ही खड़े रहने का कष्ट न करें और अपने घरों को जायें ।"

यह सुनते ही वहाँ बड़ी हलचल मच गयी ।

"भाई-भतीजाबाद", "मुर्दाबाद" के नारे लगने लगे ।

लोग कहने लगे कि जब इस व्यक्ति को इस भाँति पहले से चुन लिया गया था तो हमें बुलाने की ही क्या आवश्यकता थी ?

लेकिन, तार-ऑफिस के बड़े अधिकारी ने आकर कहा--"आपका अनुमान गलत है । यह व्यक्ति परीक्षा में उत्तीर्ण होकर ही नियुक्त हुआ है । हमने लाउड-स्पीकर के ऊपर तार-ऑफिस की टिक-टिक की भाषा में पुकारा था कि जो व्यक्ति

इस संदेश को समझे वह तत्काल भीतर आ जाये--उसका नियुक्ति-पत्र तैयार है। लेकिन, आप बातों में व्यस्त थे और नहीं सुन सके तो हमारा क्या कसूर है ?"

आह ! क्या एक दिन परमात्मा भी हम सबसे यही नहीं कहेगा ?

कितनी है उसकी पुकार--लेकिन क्या हमारे शोरगुल में वह टिक-टिक की आवाज ही नहीं हो गयी है ?

चुप हो--और जान।

रजनीश के प्रणाम

१७-१०-१९७०

[प्रति : मा धर्मज्योति, बम्बई]

३६ / असंभव की चुनौती में ही आत्मा का जन्म है

प्रिय कृष्ण चैतन्य,

प्रेम। जानता हूँ कि नौका तट छोड़ने के पूर्व बहुत बार खूँटियों से बँधे रहने का मोह करती है। यह स्वाभाविक ही है।

जानता हूँ कि बीज टूटने के पूर्व बहुत बार अनिश्चय में पड़ जाता है, क्योंकि वह जो है, उसे मिटाना है, और जो नहीं है, उसे पाना है। जो है वह उसे सत्य प्रतीत होता है, जो होना है, वह स्वप्न। और, सत्य और स्वप्न में चुनना हो तो जो सत्य मालूम होता है उसी ओर मन झुके तो आश्चर्य तो नहीं है।

जानता हूँ कि सरिता भी सागर में गिरने के पूर्व पीछे मुड़-मुड़ कर देखने लगती है। **अतीत खींचता है, भविष्य भय देता है।** साधारणतः यही संभव है।

लेकिन, मैंने तुमसे असंभव की आशा की है। क्योंकि, **असंभव की चुनौती ही आत्मा का जन्म है।**

रजनीश के प्रणाम

२५-१०-१९७०

[प्रति : स्वामी कृष्ण चैतन्य, संस्कार-तीर्थ, आजोल, गुजरात]

३७ / साधना के पथ पर शत्रु भी मित्र हैं

प्रिय योग प्रेम,

प्रेम। तेरे साहस और तेरे संकल्प से खुश हूँ।

ऐसे ही सोना शुद्ध होता है।

इसलिए, जो भी संकल्प और साहस के लिए अवसर दे, उसका अनुग्रह मानना।

साधना के पथ पर शत्रु भी मित्र हैं।

किसी के प्रति दुराग्रह नहीं बनाना।

मार्ग के पत्थरों की सीढ़ियाँ बना लेना ही जीवन की कला है।

फिर तो काँटे भी फूल हो जाते हैं।

और अमावस भी पूनम बन जाती है।

रजनीश के प्रणाम

२५-१०-१९७०

[प्रति : मा योग प्रेम, संस्कार-तीर्थ, आजोल, गुजरात]

३८ / अज्ञानी होने की तैयारी में वास्तविक ज्ञान का जन्म

मेरे प्रिय,

प्रेम। पत्र पाकर आनंदित हूँ।

ध्यान के संबंध में जो आपने नहीं कहा था, वह मुझे ज्ञात है। लेकिन, सोचा था कि आप कहें तभी बात करना उचित होगा। इसलिए चुप रहा।

जो संकोच कहने में बाधा बना, वही संकोच ध्यान करने में भी बाधा बन रहा है।

संकोच छोड़ें—**पागल हुए बिना प्रभु से मिलन नहीं होता है।**

संकोच के पीछे तथाकथित समझ है—या कि उसे नासमझी कहें?

बौद्धिक समझ (Intellectual Understanding) समझ ही नहीं है।

समझ छोड़ें और नासमझी में उतरें।

अज्ञान का भी अपना राज (Secret) है।

अज्ञानी होने की तैयारी ही वास्तविक ज्ञान का प्रारंभ बन जाती है।

फिर, परिणाम (Result) की राह न देखें।

वह तो आयेगा ही।

लेकिन, उसका विचार करने से उसके आने में बाधा ही पड़ती है।

करें—और शेष प्रभु पर छोड़ दें।

बीज तैयार है—बस मिटें और उसे अंकुरित होने दें।

वहाँ सबको मेरे प्रणाम कहें।

तलवलकरजी को प्रेम।

रजनीश के प्रणाम

२६-१०-१९७०

[प्रति : श्री काशीनारायण सोमण, सह-सम्पादक, 'केसरी', नारायण पेठ, पूना]

३९ / बाल-बुद्धि से ऊपर उठना ही होगा

मेरे प्रिय,

प्रेम । 'श्मशानी पीढ़ी' के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ ।

सत्य की अभिव्यक्ति ही साहित्य है ।

और, वही प्रौढ़ता भी है ।

बाल-साहित्य से ऊपर उठना ही होगा ।

दुर्भाग्य से हमारा अधिक साहित्य बाल-साहित्य ही है ।

इससे बाल-बुद्धि को पीड़ा भी होगी ।

लेकिन वह अपरिहार्य है ।

मनुष्य को कब तक बच्चों के घुन-घुनों से खेलने दिया जा सकता है ?

रजनीश के प्रणाम

११-११-१९७०

[प्रति : श्री निर्भय मल्लिक, सम्पादक, 'श्मशानी पीढ़ी', ३ प्रताप घोष लेन, कलकत्ता-७]

४० / स्वयं का बचाव नहीं—बदलाहट करनी है

प्रिय धर्मज्योति,

प्रेम । प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को अपवाद (Exception) मानता है ।

और यही मान्यता जीवन के रूपान्तरण में सबसे बड़ी बाधा बन जाती है ।

साधक का पहला कदम इस भ्रांति को ही तोड़ना है ।

दोष दूसरों पर थोप कर हम सिर्फ स्वयं के दोषों की ही रक्षा कर लेते हैं ।

एक समाचार-पत्र के संवाददाता ने किसी संस्था की आलोचना करते हुए लिखा कि उसमें सब स्वार्थी और निकम्मे व्यक्ति भरे पड़े हैं ।

लेकिन, अगले दिन समाचारपत्र के मालिक ने उस संवाददाता को बुला कर बहुत डाँटा और कहा : "तुमने लिखने से पहले यह नहीं सोचा कि समाचारपत्र में ऐसा पढ़ कर उस संस्था के सभी कार्यकर्त्ता हमें परेशान करना शुरू कर देंगे ?"

संवाददाता ने कहा : "तो क्या मुझे उस संस्था के संबंध में सत्य नहीं लिखना चाहिए था ?"

यह सुन मालिक हँसने लगा और बोला : "नहीं-नहीं । सत्य जरूर लिखो । आलोचना भी करो । लेकिन, उसका भी एक वैज्ञानिक ढंग है । आप यह लिखते कि 'उस संस्था में एक व्यक्ति को छोड़ कर शेष सभी स्वार्थी और निकम्मे हैं' तो ऐसा लिखने पर किसी को भी शिकायत न होती । क्योंकि, इस भाँति प्रत्येक को स्वयं के बचाव की सुविधा मिल जाती है ।

स्वयं का बचाव नहीं करना है ।

स्वयं की बदलाहट करनी है ।

इसलिए, दोषों की खोज सदा स्वयं में ही करनी हितकर है ।

रजनीश के प्रणाम

११-११-१९७०

[प्रति : मा धर्मज्योति, बम्बई]

४१ / स्वयं को स्वीकारें

प्रिय मथुरा बाबू,

प्रेम । मन से लड़ें न ।

क्योंकि, लड़ने से मन ही बढ़ता है ।

वह विधि भी उसके विस्तार की ही है ।

और फिर मन से लड़ने से जीत तो कभी होती ही नहीं है ।

वह भी पराजय का ही सुगम सूत्र है ।

जो स्वयं से लड़ा , वह हारा ।

क्योंकि, वैसे जीत असंभव है ।

स्वयं से लड़ना स्वयं को स्व-विरोधी खंडों में विभाजित करना है ।

और दोनों ओर से स्वयं को ही लड़ना पड़ता है ।

ऐसे जीवन-ऊर्जा रुग्ण ही होती है ।

और सीज़ोफ्रेनिक भी ।

नहीं—लड़ें नहीं, **वरन् स्वयं को स्वीकारें । स्वयं के साथ रहने को राजी हों ।**

जो है—है ।

उससे भागें नहीं ।

उसे बदलने का प्रयास भी न करें ।

उसमें जियें ।

और तब जीवन-ऊर्जा अपनी अखंडता में प्रकट होती है—स्वस्थ, समाहित और सशक्त ।

और फिर रूपान्तरण घटित होता है ।
स्वस्थ, अखंड और सशक्त जीवन-ऊर्जा की छाया की भाँति ।
वह प्रयास नहीं, परिणाम है ।
वह कर्म नहीं, घटना है ।
वह प्रभु-प्रसाद है ।

रजनीश के प्रणाम

१२-११-१९७०

[प्रति : श्री मथुराप्रसाद मिश्र, पटना, बिहार]

४२ / चलो तो मार्ग बनता है

प्रिय दिनेश,

प्रेम । 'युक्रांद' के लिए मेरी शुभकामनाएँ ।

कार्य में लगो, फिर तो मार्ग क्रमशः स्वयं ही साफ होता चलता है ।

जीवन में बँधे-बँधाये और तैयार मार्ग नहीं होते हैं । यहाँ तो चलना ही मार्ग बनाना है ।

चलो तो मार्ग बनता है ।

बैठो तो मार्ग खो जाता है ।

जीवन है आकाश जैसा ।

पक्षी उड़ते हैं तो भी उनके पद-चिह्न पीछे नहीं छूटते हैं । इसलिए, जीवन में अनुगमन और अनुसरण का उपाय नहीं है ।

और जो वैसे उपाय खोजते हैं, वे जीते नहीं, बस केवल मरते हैं ।

सुशीला को प्रेम ।

रजनीश के प्रणाम

१४-११-१९७०

[प्रति : श्री दिनेश शाही, युवक क्रांति दल, १६, बी।३२।१०, भिलाई नगर-१, म० प्र०]

४३ / ईश्वर की पुकार से भर गये प्राणों में—संन्यास का अवतरण

प्रिय धर्मज्योति,

प्रेम । संन्यास उस चित्त में ही अवतरित होता है, जिसके लिए कि ईश्वर ही सब-कुछ है ।

जहाँ ईश्वर सब-कुछ है, वहाँ संसार अपने आप ही कुछ नहीं हो जाता है ।

किसी फकीर के पास एक कंबल था ।

उसे किसीने चुरा लिया ।

फकीर उठा और पास के थाने में जाकर चोरी की रिपोर्ट लिखवाई ।

उसने लिखवाया कि उसका तकिया, उसका गद्दा, उसका छाता, उसका पाजामा, उसका कोट और उसी तरह की बहुत-सी चीजें चोरी चली गयी हैं ।

चोर भी उत्सुकतावश पीछे-पीछे थाने चला आया था ।

सूची की इतनी लम्बी-चौड़ी रूपरेखा देख कर वह मारे क्रोध के प्रकट हो गया और थानेदार के सामने कम्बल फेंक कर बोला : "बस यही एक सड़ा-गला कम्बल था—इसके बदले इसने संसार-भर की चीजें लिखा डाली हैं !"

फकीर ने कम्बल उठा कर कहा : "आह ! बस यही तो मेरा संसार है !"

फकीर कम्बल उठा कर चलने को उत्सुक हुआ तो थानेदार ने उसे रोका और कहा कि रिपोर्ट में झूठी चीजें क्यों लिखायी ?

वह फकीर बोला—"नहीं—झूठ एक शब्द भी नहीं लिखाया है । देखिये ! यही कम्बल मेरे लिए सब-कुछ है—यही मेरा तकिया है, यही गद्दा, यही छाता, यही पाजामा, यही कोट ।"

बेशक उसकी बात ठीक ही थी ।

जिस दिन ईश्वर भी ऐसे ही सब-कुछ हो जाता है—तकिया, गद्दा, छाता, पाजामा, कोट—उसी दिन संन्यास का अलौकिक फूल जीवन में खिलता है ।

रजनीश के प्रणाम

१९-११-१९७०

[प्रति : मा धर्मज्योति, बम्बई]

४४ / स्वयं को खोने की तैयारी

प्यारी तारा,

प्रेम । देना ही है तो बस स्वयं के अतिरिक्त मनुष्य के पास देने को और कुछ भी नहीं है । शेष सब—दान नहीं—भेंट नहीं—देने का धोखा है । और देने के धोखे में पड़ने से न देने के सत्य में जीना ही अच्छा है ।

क्योंकि सत्य में सदा ही श्रेष्ठतर सत्य के लिए द्वार है—मार्ग है—प्यास है—पुकार है ।

प्रभु-मंदिर में तो बस उनका ही प्रवेश है जो कि स्वयं को खोने को तैयार हैं । और वह भी बेशर्त ।

इस बेशर्त समर्पण (Unconditional Surrender) के लिए तू रोज-रोज तैयार हो रही है । यह जान कर मैं अति-आनंदित हूँ ।

रजनीश के प्रणाम

१३-१२-१९७०

[प्रति : सुश्री तारा, बम्बई]

४५ / विचारों से गुजर कर विचार का अतिक्रमण

प्यारी सावित्री,

प्रेम । विचार सीढ़ी भी है और बाधा भी ।
पहले सीढ़ी है और पीछे बाधा है ।
कुछ हैं कि उस पर चढ़ते ही नहीं ।
और, कुछ हैं कि चढ़ जाते हैं तो उतरते ही नहीं ।
दोनों ही भूल में हैं ।
चढ़ना भी है और उतरना भी है ।
सीढ़ियों के––समस्त सीढ़ियों के उपयोग का यही सार-सूत्र है ।
विचार का भय घातक है ।
क्योंकि, तब चित्त विचारहीन ही रह जाता है ।
जो कि मनुष्य होना नहीं है ।
वह मनुष्य-पूर्व अवस्था है ।
कहें कि पशुता है ।
फिर विचार के मोह में भी नहीं पड़ना है ।
वह भी घातक है ।
क्योंकि, तब चित्त विचारों के अंतहीन भँवर में ही भटकता रह जाता है ।
वह प्रभु-पूर्व अवस्था है ।
या कि मनुष्य की अवस्था है ।

और जो मनुष्य ही बने रहने की जिद्द करता है, वह विक्षिप्त हुए बिना नहीं रहेगा ।

क्योंकि, मनुष्य मंजिल नहीं, बस सेतु है ।
उस पर रहना नहीं––उस पर से गुजरना है ।
इसलिए कहता हूँ––देर न करो, गुजरो ।
सेतु पर रुको नहीं––आगे बढ़ो ।
विचार पर ठहरो नहीं––निर्विचार में कूदो ।

अवसर द्वार पर आ खड़ा हुआ है––पहचानो और कूदो ।
क्योंकि, कभी-कभी ऐसे अवसर के आने में जन्म-जन्म लग जाते हैं ।
और मैं नहीं चाहता हूँ कि तेरे लिए ऐसा हो ।

रजनीश के प्रणाम

१३-१२-१९७०

[प्रति : डा० सावित्री पटेल, बलसार, गुजरात]

४६ / संकल्प की पूर्णता में या संकल्प की शून्यता में--समर्पण घटित

मेरे प्रिय,

प्रेम। संकल्प पूर्ण हो तो समर्पण बन जाता है।

उसकी पूर्णता ही फिर पूर्ण में डुबा देती है।

संकल्प शून्य हो तो भी समर्पण बन जाता है।

उसकी शून्यता ही फिर पूर्ण का अवतरण बन जाती है।

लेकिन, पूर्ण या शून्य संकल्प के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है।

दो ही मार्ग हैं।

या, कि एक ही मार्ग है जो कि दो जैसा भासता है।

चुनाव व्यक्ति के स्वधर्म पर निर्भर है।

पुरुष-चित्त संकल्प की पूर्णता को चुनता है।

स्त्री-चित्त संकल्प की शून्यता को।

लेकिन, सभी पुरुषों के पास पुरुष-चित्त नहीं है; और न ही सभी स्त्रियों के पास स्त्री-चित्त ही है।

इसीसे है जटिलता।

और, यात्रा पर निकलने के पूर्व इसलिए **स्वयं** के चित्त की ठीक पहचान अत्यन्त आवश्यक है।

चित्त बहिर्मुखी है या अन्तर्मुखी ?

चित्त सक्रिय है या निष्क्रिय ?

चित्त बौद्धिक है या भावुक ?

सत्य की खोज पर निकलने का मन है या कि सत्य के लिए द्वार खोल कर बाट जोहने की आकांक्षा है ?

स्वयं को समझो।

फिर उसीसे संकल्प या समर्पण की साधना का जन्म होता है।

रजनीश के प्रणाम

१३-१२-१९७०

[प्रति : श्री पी. डी. इंगले, संगमनेर, महाराष्ट्र]

४७ / ध्यान है अमृत--ध्यान है जीवन

मेरे प्रिय,

प्रेम। विवेक ही अन्ततः श्रद्धा के द्वार को खोलता है।

विवेकहीन श्रद्धा श्रद्धा नहीं, मात्र आत्म-प्रवंचना है।

ध्यान से विवेक जगेगा; वैसे ही जैसे सूर्य के आगमन से भोर में जगत् जाग उठता है।

ध्यान पर श्रम करें।

क्योंकि, अंततः शेष सब श्रम समय के मरुस्थल में कहाँ खो जाता है, पता ही नहीं पड़ता है।

हाथ में बचती है केवल ध्यान की संपदा।

और मृत्यु भी उसे नहीं छीन पाती है।

क्योंकि मृत्यु का वश काल (Time) के बाहर नहीं है।

इसलिए तो मृत्यु को काल कहते हैं।

ध्यान ले जाता है कालातीत में।

समय और स्थान (Space) के बाहर।

अर्थात् अमृत में।

काल (Time) है विष।

क्योंकि, काल है जन्म; काल है मृत्यु।

ध्यान है अमृत।

क्योंकि, ध्यान है जीवन।

ध्यान पर श्रम जीवन पर ही श्रम है।

ध्यान की खोज जीवन की ही खोज है।

रजनीश के प्रणाम

९-१-१९७१

[प्रति : डॉ. एल. आर. पंडित, L. P. Se., Dental Surgen, बम्बई बाजार, खंडवा, म० प्र०]

४८ / संन्यास की आत्मा--स्वतंत्रता में

प्रिय योग माया,

प्रेम। **स्वतंत्रता** से बहुमूल्य इस पृथ्वी पर कुछ और नहीं है।

उसकी गहराई में ही संन्यास है।

उसकी ऊँचाई में ही मोक्ष है।

लेकिन, सच्चे सिक्कों के साथ खोटे सिक्के भी तो चलते ही हैं।

शायद, साथ कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि खोटे सिक्के सच्चे सिक्कों के कारण ही चलते हैं!

उनके चलन का मूलाधार भी सच्चे सिक्के ही जो होते हैं।
असत्य को चलने के लिए सत्य होने का पाखंड रचना पड़ता है।
और बेईमानी को ईमानदारी के वस्त्र ओढ़ने पड़ते हैं।
परतंत्रताएँ स्वतंत्रताओं के नारों से जीती हैं।
और, कारागृह मोक्ष के चित्रों से स्वयं की सजावट कर लेते हैं!
फिर भी सदा-सदैव के लिए धोखा असंभव है।
और आदमी तो आदमी, पशु भी धोखे को पहचान लेते हैं!

मैंने सुना है कि लंदन में एक अंतर्राष्ट्रीय कुत्ता-प्रदर्शनी हुई। उसमें आये रूसी कुत्ते ने अंग्रेज कुत्ते से पूछा : "यहाँ के हालचाल कैसे हैं साथी?"

उत्तर मिला : "खास अच्छे नहीं। खाने-पीने की तंगी है। और नगर पर सदा ही धुंध छायी रहती है; जो मेरा गठिये का दर्द बढ़ा देती है। हाँ, मास्को में हालत कैसी है?"

रूसी कुत्ते ने कहा : "भोजन खूब मिलता है। चाहे जितना माँस और चाहो जितनी हड्डियाँ। खाने की तो वहाँ बिलकुल ही तंगी नहीं है।"

लेकिन फिर वह अगल-बगल झाँक कर जरा नीची आवाज में कहने लगा "मैं यहीं राजनैतिक आश्रय चाहता हूँ। क्या तुम दया करके मेरी कुछ मदद कर सकोगे?"

अंग्रेज कुत्ता स्वभावतः चकित होकर पूछने लगा : "मगर तुम यहाँ क्यों रहना चाहते हो; जब कि तुम ही कहते हो कि मास्को में हालत बड़ी अच्छी है?"

उत्तर मिला : "बात यह है कि मैं कभी-कभी जरा भोंक भी लेना चाहता हूँ। कुत्ता हूँ और वह भी रूसी, तो क्या हुआ, मेरी आत्मा भी स्वतंत्रता तो चाहती है।"

रजनीश के प्रणाम

९-१-१९७१

[प्रति : मा योग माया, संस्कार-तीर्थ, आजोल]

४९ / विवादों का सर्वश्रेष्ठ प्रत्युत्तर—मौन

प्रिय योग यशा,

प्रेम। राह चलते लोग सवाल उठायेंगे।

परिचित-अपरिचित विवाद छेड़ेंगे।

यह स्वाभाविक ही है।

जगत् के राजपथों को छोड़ कर जब भी कोई निजी पगडंडियों पर यात्रा करने को निकलता है, **तब ऐसा होता ही है।**

समाज सहज ही स्वतंत्र-चेता व्यक्तियों को समाज-बाह्य (Out-Siders) मान लेता है।

इतना ही नहीं, समाज की अवरुद्ध चेतना उन्हें समाज-विरोधी मानने की वृत्ति भी रखती है।

इसे स्वाभाविक मान कर अविचलित अपने मार्ग पर जो अडिग चलता रहता है, समाज को अन्ततः उसके संबंध में अपनी दृष्टि बदल लेनी पड़ती है।

और ध्यान रखना कि **समाज की स्मृति अति दुर्बल है।**

और जहाँ तक बने व्यर्थ के विवाद से बचना।

अन्ततः जीवन का ही परिणाम होता है, तर्क का नहीं।

और कभी-कभी मौन से श्रेष्ठ प्रत्युत्तर नहीं होता है।

उत्तर न देना भी तो उत्तर ही है।

मैं एक यात्रा में था।

मेरे पड़ोस में एक अति बातूनी सज्जन थे।

वे बातें करने को उबले जा रहे थे।

उनकी बेचैनी प्रकट थी।

अन्ततः कुछ और न सूझा तो उन्होंने चुनौती के स्वर में मेरी ओर देख कर कहा :

"मैं तो मानता नहीं कि स्वर्ग जैसी कोई चीज है?"

लेकिन मैंने सुना-अनसुना किया, हँसा और चुप रहा।

वे थोड़ी देर आहत हो चुप रहे और पुनः बोले : "मुझे तो स्वर्ग जाने की जरा भी इच्छा नहीं है।"

मैं फिर भी हँसा और चुप रहा।

पर वे सज्जन न माने सो न माने।

और फिर मानते भी कैसे?

मेरी चुप्पी ने शायद उन्हें और उकसाया।

फिर बोले : "मर कर तो क्या, मुझे यदि कोई अभी स्वर्ग जाने को कहे तो भी मैं मना कर दूँ।"

मैंने उनसे कहा : "तो आप नरक जा सकते हैं। लेकिन, यह हवाई जहाज न स्वर्ग जा रहा है, न नर्क। आप सही हवाई जहाज में जाकर बैठें।"

फिर मैं हँसता रहा और वे चुप रहे।

फिर कभी-कभी वे मेरी ओर देखते और झेंप जाते।

अंततः यात्रांत पर बोले : "मैं आपके हँसने और चुप रहने का रहस्य समझना चाहता हूँ। मैं आपकी मौन प्रसन्नता से बहुत प्रभावित हुआ हूँ।"

मैंने कहा : **लेकिन वह तत्काल ही स्वर्ग में प्रवेश का द्वार है।** और आप तो वहाँ जाना नहीं चाहते हैं न?" उनकी आँखें गीली हो गयीं।

चुप रहे और बोले : "जाना चाहता हूँ। कौन नहीं जाना चाहता है?"

रजनीश के प्रणाम

१०-१-१९७१

[प्रति : मा योग यशा, संस्कार-तीर्थ, आजोल]

५० / जीवन--एक खेल, एक अभिनय

प्यारी जयमाला,

प्रेम ! **जीवन को बहुत गंभीरता से लिया कि उलझी ।**

जीवन को समझ एक खेल ।

जीवन में देख अभिनय ।

सत्य भी वही है ।

सुन्दर भी ।

शुभ भी ।

अभिनय में देख अभिनय ।

होता ही है ।

करते हुए भी साक्षी होना केवल अभिनय में ही संभव है ।

और घुटन और व्यर्थ की गलफाँस के बाहर वही मार्ग है ।

जीवन-आकाश सदा ही खुला है--पर हम स्वयं अपने ही हाथों अपने-अपने पागलपनों में बन्द हैं ।

जीवन-सूर्य कभी भी अस्त नहीं होता है--पर हमारी आँखें अपने ही हाथों पैदा किये ध्रुवों में बँधी हैं ।

रजनीश के प्रणाम

११-१-१९७१

[प्रति : सुश्री जयमाला एन० दिद्दी, २१।३ बन्डरोड, पूना--१]

५१ / आत्मीय निकटता का रहस्य-सूत्र

प्रिय भगवती,

प्रेम ! तुम्हें अनेक प्रकार के कष्टों में डालता हूँ, ताकि तुम्हें निखार सकूँ ।

क्योंकि, जब कि सुख व्यर्थ की धूलि से ढाँक जाते हैं, तब पीड़ा निखारती है ।

तुम्हें सब भाँति नया करना है ।

कठिन है वह कार्य; क्योंकि नये जन्म की प्रसव-पीड़ा अनिवार्य है ।

कभी तुम्हें दूर भी रख सकता हूँ--जान कर ही ।

ताकि निकट ला सकूँ ।

क्योंकि, शरीर की निकटता में अक्सर आत्मीय निकटता विस्मृत हो जाती है ।

और शरीर की दूरी का बोध प्राणों को निकट ले आता है ।

जीवन अत्यंत अद्‌भुत और स्व-विरोधी नियमों का ताना-बाना है ।

ऑस्कर वाइल्ड ने कहा है : जीवन में दो दुःख हैं--एक कि जिसे चाहा है वह न मिले और दूसरा कि वह मिल जाये ।

और मैं कहता हूँ कि दूसरा दुःख निश्चय ही पहले से गहन और गंभीर है ।

सच तो यह है कि दूसरे के समक्ष पहले को दुःख कहना ही शायद ठीक नहीं है ।

पूछा जा सकता है : फिर सुख कहाँ है ?

ऑस्कर वाइल्ड द्वारा गिनाये गये **दोनों दुःखों के मध्य में ।**

यद्यपि मन मध्य को कभी भी चुनना नहीं चाहता है ।

पर मैं तुम्हें निरंतर इसीको चुनने की शिक्षा दे रहा हूँ ।

जानना है सुख तो चुनो मध्य ।

क्योंकि, मध्य ही स्वर्ण-पथ है ।

लेकिन मध्य का अर्थ क्या है ?

मध्य का अर्थ है कि **जिसे चाहा है, वह न भी मिले और मिला हुआ हो ;** या फिर मिले भी तो भी न मिला बना रहे ।

रजनीश के प्रणाम

११-१-१९७१

[प्रति : मा योग भगवती, बम्बई]

५२ / एक ही सत्य के अनंत हैं प्रतिफलन

मेरे प्रिय,

प्रेम ! सत्य तो नया है --न कि पुराना।

इसलिए न तो नये होने से कोई किताब वैज्ञानिक हो जाती है, न ही पुराने होने से। और एक शास्त्र के अन्तर्गत सारे जगत् को लाने की बात भी व्यर्थ है।

वैसा विचार ही उस उपद्रव और वैमनस्य का कारण है जिसे कि आप मिटाना चाहते हैं।

मनुष्यों की रुचियाँ भिन्न हैं।

मनुष्यों की दृष्टियाँ भिन्न हैं।

इसलिए, एक सत्य भी अनेक भासता है और एक धर्म भी अनेक रूप लेता है।

यही स्वाभाविक है। यही शुभ है।

और जो इस वैविध्य को बर्दाश्त नहीं कर पाता है; वह मानसिक चिकित्सा के लिए उम्मीदवार है।

सूर्य तो निश्चय ही एक है--लेकिन उसके प्रतिफलन अनंत हैं।

सागरों में, सरोवरों में, सरिताओं में।

काल के सरोवरों में--क्षेत्र के सागरों में--व्यक्तियों की सरिताओं में सत्य भी अनेक प्रतिबिम्ब बनाता है।

वे सभी प्रतिबिंब शिव हैं। वे सभी पवित्र हैं।

क्योंकि वे सभी एक प्रभु से ही आते हैं और उसी एक प्रभु की ओर इंगित करते और जो चलने को राजी हैं, उसे उस एक प्रभु में ही ले जाते हैं।

वेद, कुरान, बाइबिल, अवेस्ता--सभी प्रतिबिंब हैं।

कृष्ण, क्राइस्ट, महावीर, मुहम्मद--सभी इशारे हैं।

कुरान या बाइबिल के प्रति आपकी घृणा और वेद के प्रति आपका राग सत्य के पथिक के सूचक नहीं हैं।

काश ! आप वेद को भी समझते; लेकिन नहीं समझते हैं--क्योंकि समझते तो कुरान या बइबिल के प्रति भी दुर्भाव न रह जाता।

सूर्य को किसी भी प्रतिफलन से क्यों न देखा हो, फिर तो सभी प्रतिफलन समझ में आ जाते हैं।

सागर की एक बूंद भी जिसने चखी, उसे समस्त सागर के स्वाद का पता चल जाता है।

रजनीश के प्रणाम

११-१-१९७१

[प्रति : श्री अर्जनलाल नरेला, १४२७, नया बाजार, नींमच कैंट, नीमच, म. प्र.]

५३ / "मैं-मेरे" के भ्रम का बोध

प्रिय कृष्ण चैतन्य,

प्रेम। 'मेरे' का भाव ही दुःख का कारण है।

'मेरे' का भाव ही संसार है।

'मेरे' के अतिरिक्त आत्मा पर और कोई जंजीरें नहीं हैं।

मेरे के स्वप्न से जागते ही दुःख से भी जागना हो जाता है।

मैं किसी के घर मेहमान था।

घने जंगल में बसे एक छोटे से गाँव में।

संध्या किसी बातचीत के सिलसिले में मेरे आतिथेय-मित्र की बहन ने बड़े गर्व से मुझसे कहा : "यह घर मेरे पिता की बदौलत है––यह फर्नीचर, ये कपड़े, ये गहने, ये बर्तन यह कार––सब उनके ही दिये हुए हैं। आपके मित्र का यहाँ सिवाय कविताओं के और कुछ भी नहीं है।"

मैंने सुना और मैं हँसा।

मेरे मित्र पहले उदास हुए और फिर मेरी हँसी में सम्मिलित हो गये।

रात्रि में ऐसा लगा कि घर में चोर घुसे हैं।

पत्नी ने पति को जगाया।

लेकिन पति बोले : "मेरा इस घर में है ही क्या ?" और फिर करवट बदल कर सो गये।

मैं भी जाग गया था।

मुझे फिर हँसी आ गयी और मैंने कहा : "लेकिन तुम्हारी कविताओं के संग्रह भी तो पीछे के कक्ष में ही रखे हैं !"

मित्र हड़बड़ा कर उठे और बोले : "अरे ! हाँ !"

मैं फिर हँसा।

प्रकाश जलाया गया। चोर नहीं थे। सिर्फ भ्रम ही हुआ था।

लेकिन क्या ऐसे ही 'मैं–मेरे का भाव' भी भ्रम ही नहीं है ?

इसलिए कहता हूँ : **"प्रकाश जलाओ और देखो।"**

रजनीश के प्रणाम

११-१-१९७१

[प्रति : स्वामी कृष्ण चैतन्य, विश्वनीड़, संस्कार-तीर्थ, आजोल, गुजरात]

५४ / 'मैं' है जहाँ, वहाँ विनम्रता कहाँ ?

प्रिय योग वीणा,

प्रेम ! ज्ञान सदा निराग्रही है।

ज्ञान सदा विनम्र है।

क्योंकि, व्यक्ति जितना ही जानता है, उतना ही पाता है कि कितना कम जानता है।

अज्ञान आग्रह है।

अज्ञान अहंकार है।

क्योंकि, व्यक्ति जितना कम जानता है उतना ही पाता है कि कितना जानता है !

स्वभावतः, क्योंकि ऊँट को पर्वत के निकट आये बिना ज्ञात भी कैसे हो कि वह पर्वत नहीं है !

लेकिन' विनम्रता भी झूठी हो सकती है।

और विनम्रता भी मात्र बौद्धिक हो सकती है। **और मात्र बौद्धिक विनम्रता विनम्रता नहीं है।**

एक बुद्धिमान मित्र ने एक दिन मुझसे आकर कहा : "मेरा विचार है कि बुद्धिमान अविश्वासी होते हैं और मूर्ख लोग पूर्णतया विश्वासी।"

मैंने उनसे पूछा : "क्या आपको अपने कथन पर पूरा विश्वास है ?"

वे बोले : **"पूर्णतया।"**

ऐसी ही स्थिति उनकी होती है, जो कहते हैं "मैं विनम्र हूँ।"

'मैं' है जहाँ वहाँ विनम्रता कहाँ ?

विनम्रता का बोध भी है जहाँ, वहाँ विनम्रता कहाँ ?

रजनीश के प्रणाम

११-१-१९७१

[प्रति : मा योग वीणा, विश्वनीड़, संस्कार-तीर्थ, आजौल, गुजरात]

मेरे प्रिय

प्रेम। आपका पत्र पाकर अति आनन्दित हूँ।

न मिलने से इतने विक्षुब्ध हो सकते हैं--इससे मैं विमुग्ध हूँ।

प्रेम ही आहत होकर क्रोध बन जाता है।

वह **जो प्रेम क्रोध न बन सके वह मृत ही है।**

जब सोचता हूँ कि **जो प्रेम मिलने पर भी प्रकट न होता, वह न मिलने से प्रकट हो पाया है।**

जीवन बड़ा बेबूझ है।

मेरे न मिलने के तुम्हारे द्वारा लिखे कोई भी कारण सही नहीं हैं--तुम्हारी बम्बई में उपस्थिति की मुझे पूरी खबर थी--तुम मिलने आना चाहते हो यह भी मुझे ज्ञात था--समय की भी मेरे पास कोई कमी न थी--और मैं तुमसे मिलना भी चाहता था--इतना ही नहीं, तुम्हारे आने की प्रतीक्षा भी कर रहा था; **लेकिन फिर भी मिला नहीं।**

क्यों ?

क्योंकि जब भी चाहा कि तुम्हें बुलाऊँ **तभी भीतर इनकार उठा**--और जब भी ऐसा होता है, तब मैं भीतर की आवाज पर ही बिलकुल अतर्क्य स्वयं को छोड़ देता हूँ।

इसलिए कारण क्या बताऊँ ?

और क्षमा भी क्या माँगूँ ?

रजनीश के प्रणाम

१२-१-१९७१

[प्रति : श्री व्हाय. एस. धर्माधिकारी, एडवोकेट, राइट टाउन, सबलपुर, म. प्र.]

प्रिय योग मूर्ति,

प्रेम। बंधन या मुक्ति वस्तु में नहीं, दृष्टि में होती है।

और इसलिए खुले आकाश के नीचे खड़ा व्यक्ति भी बंधन में हो सकता है; और जंजीरों में बंधा, कारागृह के अंध-कक्ष में पड़ा, व्यक्ति भी मुक्त हो सकता है।

इसलिए तो कहता हूँ : **स्वयं को कहीं से मुक्त करने के बजाय--स्वयं से मुक्त होने को साधो।**

मुक्ति की यात्रा बाह्य नहीं, आत्यंतिक रूप से आंतरिक है।

इसलिए जो नहीं जानते उन्हें संन्यास भी बंधन है; और जो जानते हैं उन्हें संसार भी मोक्ष है।

भागने वाले नहीं--जानने वाले बनो।

और भागोगे कहाँ ?

जो मन यहाँ जंजीरें ढाल लेता है, वह **मन** वहाँ भी जंजीरें ढाल लेगा।

और मन से तो भागोगे ही कैसे ?

वह तो तुम ही हो--**जो भाग रहा है वही तो मन है।**

इसलिए भागो ही मत।

शक्ति को व्यर्थ ही भागने में मत गँवाओ।

जहाँ हो वहीं रुको और **जागो।**

रजनीश के प्रणाम

१३-१-१९७१

[प्रति : स्वामी योगमूर्ति, संस्कार-तीर्थ, आजोल (गुजरात)]

५७ / जीवन-रहस्य.

प्यारी गुणा,

प्रेम। एक दिन जेन फकीर होशिन ने अपने शिष्यों को एक कहानी सुनायी : "तोफुकु (Tofuku) बूढ़ा हो गया था। उसने एक दिन अपने शिष्यों से कहा : 'मैं एक वर्ष से ज्यादा तुम्हारे बीच नहीं रहूँगा। **इसलिए, नासमझो, अब तुम सब मेरी बातें ठीक से ध्यान में रख लेना।**' लेकिन, शिष्यों ने सोचा कि वह मजाक कर रहा है। एक वर्ष बीत गया तो तोफुकु ने कहा : 'अब आखिरी क्षण निकट है। आज रात्रि जब बर्फ गिरनी बंद हो जायेगी, तो मैं तुमसे विदा ले लूँगा।' लेकिन, इस पर शिष्य बहुत हँसे, क्योंकि आकाश पूरी तरह साफ था और बर्फ का कहीं पता ही नहीं था ! उन्होंने सोचा कि मालूम होता है कि बूढ़े तोफुकु का दिमाग अब ठीक से काम नहीं करता है। लेकिन, अर्ध-रात्रि के पूर्व ही बर्फ पड़ने लगी ! पर शिष्यों ने सोचा कि यह मात्र संयोग की बात है ! और सुबह से पूर्व ही बर्फ बंद भी हो गयी, लेकिन तब तक शिष्य तोफुकु की बात को रात के स्वप्नों में दबा चुके थे ! सूर्य निकला और रात्रि पड़ी बर्फ पर धूप चमकने लगी। लेकिन बूढ़े तोफुकु को उसके कक्ष से न निकलते देख शिष्य कक्ष के भीतर गये। लेकिन वहाँ तो सिर्फ शरीर पड़ा था और तोफुकु जा चुका था !"

होशिन (Hoshin) के शिष्यों को इस कहानी पर भरोसा नहीं आया !

किसी एक ने मजाक में होशिन से पूछा : "क्या आप भी ऐसी भविष्यवाणी कर सकते हैं ?"

होशिन ने कहा : "मेरे लिए तो वर्ष भर भी कहाँ बचा है ! बस, सात दिन ही शेष हैं-- **इसलिए नासमझो, जो मैं तुमसे कहूँ उसे ठीक से ध्यान में रख लेना।**"

लेकिन, कौन उसका भरोसा करता ? शिष्य हँसे और बात आयी-गयी हो गयी !

और सात दिन बाद जब होशिन ने उन्हें अपने कक्ष में बुलाया तो उन्हें सात दिन पहले हुई बात का स्मरण ही नहीं था !

होशिन ने उनसे कहा : "यह उचित है कि परंपरानुसार मैं एक विदा-गीत लिखूँ-- लेकिन न तो मैं कोई कवि हूँ और न ही मेरे हस्ताक्षर अच्छे हैं, फिर भी मैं बोलता हूँ और तुममें से कोई लिख ले।"

शिष्यों ने समझा कि निश्चित ही वह मजाक कर रहा है, लेकिन मजाक ही मजाक में उनमें से एक लिखने को भी बैठ गया।

होशिन ने लिखवाया : "मैं आया आलोक से,
और, लौटता हूँ पुनः आलोक को।
लेकिन, क्या है इसका अर्थ ?"

लेकिन, चौपाई में परंपरानुसार एक पंक्ति कम थी; इसलिए शिष्यों ने हँसते हुए भूल निकाली और कहा : "गुरुदेव, एक पंक्ति अभी कम है !"

होशिन हँसा और फिर उसने सिंह जैसी गर्जना की और उस गर्जना से ही चौथी पंक्ति पूरी कर वह जा चुका था !

और, क्या मैं तुझे बताऊँ कि इसका अर्थ क्या है ?

रजनीश के प्रणाम

१३-१-१९७१

[प्रति : सुश्री गुणा शाह, बम्बई]

५८ / ......और तब संसार ही निर्वाण है

प्यारी वंदना,

प्रेम । शब्दहीन शब्द भी हैं––और द्वारहीन द्वार भी ।

जो नहीं दिखाई पड़ता है, उसे देखने की विधि भी है ।

और जो नहीं सुनाई पड़ता है, उसे सुनने की भी ।

शरीर पर अस्तित्व बस प्रारंभ ही होता है, अन्त नहीं ।

और आकार मात्र आवरण है, आत्मा नहीं ।

इसीलिए, **मैं कभी चुप रह कर भी बोलता हूँ ।**

और कभी बोल कर भी चुप रहता हूँ ।

उसे तो तू पढ़ना ही जो मैंने लिखा है; लेकिन उसे मत भूल जाना जो मैंने लिखा नहीं, वरन् अनलिखा ही छोड़ दिया है ।

वीणा के स्वर जब विलीन हो जाते हैं और तार निस्पंद, तब भी संगीत तो बहता ही रहता है; **और जिसने उस संगीत को नहीं सुना, उसने संगीत सुना ही नहीं है ।**

सूर्य के विदा हो जाने पर भी आलोक तो विदा नहीं होता है और जिसने आलोक में ही बस आलोक देखा है, उसने आलोक देखा ही कहाँ है ?

अंधकार में भी जब आँखें आलोक ही देखती हैं; तभी शरीर में आत्मा के दर्शन होते हैं और तब विष अमृत है और मृत्यु जीवन है और संसार ही निर्वाण है ।

रजनीश के प्रणाम

१३-१-१९७१

[प्रति : सुश्री वंदना पुंगलिया, १०१ टिम्बर मार्केट, पूना–२]

५९ / समर्पण ही साधना है

प्यारी शिरीष,

प्रेम । शुभ है अपूर्णता का बोध ।

मंगलदायी है अज्ञान का स्मरण ।

श्रेयस्कर है स्वयं की असहायावस्था की प्रतीति ।

क्योंकि, ऐसे बोध **में से ही** पूणता का द्वार खुलता है ।

और स्वयं को समग्ररूपेण असहारा (Helpless) समझना ही प्रभु को स्वय पर कार्य करने का अवसर देना है ।

क्योंकि , **समर्पण ही साधना है ।**

'सर्वं धर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज ।'

रजनीश के प्रणाम

१३-१-१९७१

[प्रति : सौ. शिरीष पै, शिव शक्ति, वरली, बम्बई–१८]

६० / मौन सम्प्रेषण

प्रिय कृष्ण चैतन्य,

प्रेम ! एक अपरिचित-अनजान व्यक्ति ने बुद्ध से पूछा : "शब्दों से नहीं, और निःशब्द से भी नहीं---लेकिन फिर भी क्या आप सत्य के संबंध में मुझसे कुछ कहेंगे ?"

बुद्ध हँसे और मौन रहे।

उस अपरिचित-अनजान व्यक्ति ने **उनकी आँखों में झाँका** और फिर उनके चरणों में सिर रख बुद्ध को धन्यवाद दिया और कहा : "आपकी प्रीतिपूर्ण करुणा से मेरे संदेह दूर हुए और आपके अमृत आशीषों की छाया में मैं सत्य-पथ पर प्रवेश करता हूँ।"

और जब वह अपरिचित-अनजान व्यक्ति जा चुका तो आनन्द ने बुद्ध से पूछा : "उसे मिला ही क्या होगा ?"

बुद्ध फिर हँसे और बोले : **"अच्छे घोड़े कोड़े की छाया से ही गति पकड़ लेते हैं।"** (A good horse runs at the shadow of the whip.)

रजनीश के प्रणाम

१४-१-१९७१

[प्रति : स्वामी कृष्ण चैतन्य, संस्कार-तीर्थ, आजोल]

६१ / आयाम-शून्य आयाम

मेरे प्रिय,

प्रेम। एक शिष्य ने केम्बो (Kembo) से पूछा : "सभी बुद्ध पुरुष निर्वाण के एक ही मार्ग पर अग्रसर होते हैं, और सभी युगों के। लेकिन, वह मार्ग कहाँ है और कहाँ से प्रारंभ होता है ? (Where does that road ?)"

कैम्बो ने अपनी छड़ी उठा कर हवा में शून्य की आकृति बनाते हुए कहा : "यह रहा वह मार्ग। **यहीं से** वह शुरू होता है (Here it is begin.)।"

यही शिष्य फिर उमोन (Ummon) के पास गया और वही सवाल उससे भी पूछा।

दोपहर थी और उमोन के हाथ में पंखा था, उसने सभी दिशाओं में पंखा हिलाकर कहा : **"वह मार्ग कहाँ नहीं है ?** उसका आरंभ **कहाँ नहीं है ?"** (Where it is not ?)"

और फिर जब किसी ने ममोन (Mummon) से इस घटना का राज पूछा, तो उसने कहा : **"इसके पहले कि प्रथम कदम उठे मंजिल आ जाती है और इसके पूर्व कि जिह्वा हिले वक्तव्य पूरा हो जाता है।** (Before the first step is taken the goal is reached. And, before the tongue is moved the speech is finished."

रजनीश के प्रणाम

१४-१-१९७१

[प्रति : श्री कमलेश शर्मा, ब्राह्मणपारा, रायपुर, मध्यप्रदेश]

मेरे प्रिय,

प्रेम। जीवन नहीं बीतता, मनुष्य बीतता है।

समय नहीं चुकता, मनुष्य चुक जाता है।

लेकिन, मनुष्य का मन सदा ही **जो स्वयं** में होता है, उसे कहीं और प्रक्षेप (Project) करके देखता है।

इस भूल से बचना।

इस भ्रांति से सावधान रहना।

मनुष्य है एक ऐसा घर जो कि **प्रतिपल जल रहा है।**

और यह दिखाई पड़े तो छलाँग लग सकती है।

देखो––सोचो मत––देखो।

सोचने से प्रक्षेपण (Projection) शुरू हो जाता है।

विचार की प्रक्रिया प्रक्षेपण की ही प्रक्रिया है।

इसलिए **दो विचारों के बीच में जो अंतराल (Gap) है उसमें जागो और देखो।**

और फिर तुम जिस जीवन-क्रांति को चाहते हो, वह छाया की भाँति अपने आप चली आती है।

रजनीश के प्रणाम

१४-१-१९७१

[प्रति : श्री जनकराय एस. व्यास, सरकारी अध्यापन मंदिर, ध्रौल, जि. जामनगर (गुजरात)]

प्रिय योग मूर्ति,

प्रेम। आह! क्या तुम्हें ऐसा लगता है कि "आये थे हरिभजन को, ओटन लगे कपास?"

तब तुम न तो हरिभजन का ही अर्थ समझते हो न ही कपास ओटने का।

जिसके लिए 'कपास औटने' के प्रति निंदा का भाव है, वह कहीं भी क्यों न जाये, कपास ही ओटेगा।

और जो 'हरिभजन' को जीवन की समग्रता से तोड़ कर अलग-थलग देखता है, वह आज नहीं तो कल पायेगा ही कि कपास ओट रहा है।

हरिभजन और कपास ओटने में ऐसी कोई शत्रुता नहीं है।

पूछ देखो : कबीर से।

या, गोरा कुम्हार से।

जीवन की कला तो यही है कि **कपास ओटने में भी हरिभजन हो और हरि-भजन में भी कपास ओटा जा सके।**

इसलिए तो मेरे लिए संन्यास संसार का विरोध नहीं, वरन् संसार को ही देखने का एक नया आयाम है।

संसार है कर्ता-ग्रसित दृष्टि।

संन्यास है कर्ता-मुक्त दृष्टि।

संसार है निद्रा साक्षी की।

संन्यास है जागरण साक्षी का।

कपास ओटो जागे हुए तो हरिभजन है।

हरिभजन करो सोये हुए तो कपास ओटना है।

कबीर ने इसे ही सहज समाधि कहा है : "साधो, सहज समाधि भली।"

रजनीश के प्रणाम

१४-१-१९७१

[प्रति : स्वामी योग मूर्ति, संस्कार-तीर्थ, आजोल]

प्रिय योग मूर्ति,

प्रेम। मुझ पर श्रद्धा की क्या जरूरत है ?

श्रद्धा लाओ अपने पर।

क्योंकि, अंततः वही मुझ पर श्रद्धा बनेगी।

और वही परमात्मा पर।

लेकिन जिसकी **स्वयं पर ही** श्रद्धा नहीं है; उसकी और किसी श्रद्धा का मूल्य ही क्या है ?

स्वयं के प्रति अश्रद्धालु रहते हुए किसी पर श्रद्धा लाओगे भी कैसे ?

तुम ही लाओगे न ?

और जब तुम्हारी स्वयं में ही श्रद्धा नहीं है--तो **तुम्हारे ही द्वारा लायी गयी** श्रद्धा में कितनी श्रद्धा हो सकेगी ?

नहीं--इस दुश्चक्र में मत पड़ो।

अच्छा होगा कि प्रारंभ से ही प्रारंभ करो।

रजनीश के प्रणाम

१४-१-१९७१

[प्रति : स्वामी योग मूर्ति, संस्कार-तीर्थ, आजोल]

मेरे प्रिय,

प्रेम। निश्चय ही **सब-कुछ छीन** लूँगा तुमसे।

तुम्हें भी छीन लूँगा तुमसे।

क्योंकि, इसके पूर्व **कि तुम मिटो, दुःख नहीं मिटता है।**

क्योंकि, इसके पूर्व कि तुम मिटो, बन्धन नहीं मिटते हैं।

जीवन की परम स्वतंत्रता ही जीवन है।

और वह परम स्वतंत्रता (Ultimate Freedom) **'मैं की' स्वतंत्रता नहीं, 'मैं से' स्वतंत्रता है।**

रजनीश के प्रणाम

१५-१-१९७१

[प्रति : श्री जनकराय एस. व्यास, सरकारी अध्यापन मंदिर, ध्रौल, जि. जामनगर (गुजरात)]

मेरे प्रिय,

प्रेम । शास्त्र उलझा सकते हैं——शास्त्र भटका सकते हैं ।

इसलिए जो शास्त्रों से सावधान नहीं है, वह सत्य तक पहुँचने के पूर्व ही यात्रा का अंत समझ लेता है ।

एक शिष्य ने उमोन (Ummon) से कहा : "बुद्ध का प्रकाश सारे विश्व को प्रकाशित करता है । बुद्ध की प्रज्ञा सारे जगत् को आन्दोलित करती है ।"

लेकिन, वह अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि उमोन ने कहा : **"आह ! क्या तुम किसी और की पंक्तियाँ नहीं दोहरा रहे हो ?"**

शिष्य झिझका तो उमोन ने उसकी आँखों में ध्यान से देखा ।

घबड़ा कर शिष्य ने कहा : "हाँ" ।

उमोन बोला : **"तब तुम मार्ग-च्युत हो गये हो ।"**

रजनीश के प्रणाम

१५-१-१९७१

[प्रति : स्वामी योग चिन्मय, बम्बई]

मेरे प्रिय,

प्रेम । निनाकावा मृत्यु-शय्या पर था तभी इक्कयु (Ikkyu) उससे मिलने आया । इक्कयु ने आते ही कहा : "क्या मैं मार्गदर्शन करूँ ?" (Shall I lead you ?) यह सुन कर निनाकावा (Nina Kawa) ने आँखें खोलीं और कहा : **"मैं अकेला आया था और अकेला जा रहा हूँ । और तुम मेरी क्या सहायता कर सकोगे ?"** (I came here alone and I go alone, what help could you be to me ?)

इक्कयु हँसा और बोला : **"यदि तुम सोचते हो कि सच ही तुम आते-जाते हो तो तुम भ्रम में हो । तब मुझे वह मार्ग बताने दो जिस पर कि न जाना है, न आना है ।"** ——(If you think you really come and go, that is your delusion. Let me show you the path on which there is no comming and going.)

मनुष्य के भ्रम तो भ्रम हैं ही।

मनुष्य जिन्हें सत्य मानता है, वे भी भ्रम ही हैं ।

और जो वस्तुतः सत्य है, उसे जाना तो जा सकता है, लेकिन माना नहीं ।

सत्य की खोज में भी अक्सर ऐसा हो जाता है कि व्यक्ति एक भ्रम को छोड़ता है, तो ठीक उससे विपरीत भ्रम को पकड़ लेता है ।

सत्य किसी भ्रम का विपरीत नहीं है ।

सत्य भ्रम मात्र से मुक्ति है ।

सत्य भ्रम का अभाव है ।

रजनीश के प्रणाम

१५-१-१९७१

[प्रति : स्वामी योग चिन्मय, बम्बई]

प्रिय कृष्ण चैतन्य,

प्रेम। एक दिन गोसो (Goso) ने अपने शिष्यों से कहा : "एक भैंस उस आँगन से बाहर निकल गयी है, जिसमें कि वह कैद थी। उसने आँगन की दीवार तोड़ डाली है। उसका पूरा शरीर ही दीवार से बाहर निकल गया है––सींग, सिर, धड़, पैर––सभी कुछ––**लेकिन पूँछ बाहर नहीं निकल पा रही है। और पूँछ कहीं उलझी भी नहीं––और पूँछ को किसी ने पकड़ भी नहीं रखा है! मैं पूछता हूँ कि फिर भी पूँछ बाहर क्यों नहीं निकल पा रही है?"**

शिष्य सोचने लगे और गोसो हँसने लगा!

फिर उसने कहा : "जिसने सोचा उसकी भी पूँछ उलझी!"

शिष्य और भी जोर से विचारों में खो गये।

फिर गोसो ने कहा : **जिसकी समझ में न आवे वह पीछे लौट कर अपनी पूँछ देखे।"**

और फिर बहुत वर्षों बाद जब ममोन (Mumon) से किसी ने इस घटना के संबंध में पूछा तो ममोन ने कहा: **"यदि भैंस आगे बढ़े तो खाई है; और यदि पीछे लौटे तो कारागृह है। इसलिए, वह छोटी-सी पूँछ न उलझी हुई भी उलझी हुई है!"**

अहंकार की कठिनाई भी यही है।

आह! छोटी-सी पूँछ!

रजनीश के प्रणाम

१५-१-१९७१

[प्रति : स्वामी कृष्ण चैतन्य, संस्कार-तीर्थ, आजोल]

प्रिय योग निवेदिता,

प्रेम। **अन्ततः** चल पड़ी तू यात्रा पर।

जन्मों से तूने यही चाहा था।

पर साहस न जुटा पायी––संकल्प न कर पायी।

अब अवसर मिला और तू साहस भी कर पायी है तो मंजिल दूर नहीं है।

निकट ही है वह जिसकी कि खोज है।

'दिल के आइने में है तस्वीरे यार।

मिला ही हुआ है वह जिससे मिलन को कि प्राण प्यासे हैं।

वस्तुतः तो उसे कभी खोया ही नहीं है; लेकिन **जिसे कभी नहीं खोया है–– उसे भी खोजना पड़ता है!**

कम-से-कम गर्दन तो झुकानी ही पड़ती है न?

'जब जरा गर्दन झुकायी देख ली।'

और तूने गर्दन झुका दी है।

इसलिए ही तुझे नाम दिया है : निवेदिता।

अब स्वयं को प्रभु पर छोड़ देना है।

जो उसकी मर्जी––अब वही तेरा जीवन है।

रजनीश के प्रणाम

१५-१-१९७१

[प्रति : मा योग निवेदिता, (कुमारी रमा) हाथीखाना स्ट्रीट, राजकोट, गुजरात]

प्रिय कृष्ण चैतन्य,

प्रेम। कोकुशी ने पुकारा : "ओशिन !"

गुरु की आवाज पर शिष्य ने कहा : "जी !"

लेकिन, कोकुशी ने दुबारा पुकारा--प्रेम और करुणा से घर्राती आवाज : "ओशिन !"

शिष्य ने सजग होकर कहा--जैसे सूर्यमुखी का फूल सूर्य से कहे : "जी !"

लेकिन बूढ़ा कोकुशी (Kokushi) नहीं माना--नहीं माना--उसने फिर से पुकारा--जैसे अँधेरे में खो गये बेटे को माँ पुकारे : "ओशिन।"

शिष्य के प्राण जैसे किसी अभिनव यात्रा के लिए तैयार हो गये हों--पक्षी जैसे उड़ने के पूर्व अपने परों को तौले ऐसे--या कि नदी जैसे सागर में गिरने के पूर्व बोले, ऐसे ही वह पुनः बोला : "जी !"

कोकुशी ने सुना तो उसकी आँखों में आँसू तैरने लगे : आनन्द के आँसू--प्रभु के प्रति अनुग्रह के आँसू।

और फिर उसने ओशिन (Oshin) से कहा : **"इस भाँति बार-बार पुकारने के लिए मुझे तुमसे क्षमा माँगनी चाहिए; पर वस्तुतः तो तुम्हीं मुझसे क्षमा माँगो तो ठीक है।** (I ought to apologize to you, for all this calling; but really you ought to apologize to me.)

प्यारे कृष्ण चैतन्य--तुम्हारा क्या ख्याल है ?

रजनीश के प्रणाम

१५-१-१९७१

[प्रति : स्वामी कृष्ण चैतन्य , विश्वनीड़, संस्कार-तीर्थ, आजोल, गुजरात]

प्यारी मधु,

प्रेम। स्वप्न से जागकर कैसा सब बदल जाता है ?

ऐसा ही सब तेरे लिए बदल गया है।

लेकिन, जो अभी भी सोये हुए हैं--वे करें भी तो क्या करें ?

वे अभी भी निद्रा में बड़बड़ाते रहेंगे--उनकी भाषा नींद की ही होगी। और उनके संदर्भ भी स्वप्न के ही होंगे।

उन पर दया रखना है; क्योंकि उन्हें भी जगाना है।

वे मुझे गलत समझें तो ठीक--लेकिन मुझे अब उन्हें गलत समझने का कोई भी उपाय नहीं है।

ज्ञान शक्ति ही नहीं, दायित्व भी है।

और मैं आनन्दित हूँ कि तू अपना दायित्व भी समझती है और उसे कुशलता से निबाह भी रही है।

मधु, योग कर्म में कुशलता है।

रजनीश के प्रणाम

१५-१-१९७१

[प्रति : माँ आनन्द मधु, विश्वनीड़, संस्कार-तीर्थ, आजोल]

मेरे प्रिय,

प्रेम। अब तक तो कुआँ प्यासों तक जाता रहा; लेकिन शायद अब ऐसा न हो सकेगा।

अब तो प्यासों को ही कुआँ तक आना होगा।

और शायद यही नियमानुसार भी है!

नहीं क्या?

मैं यात्राएँ करीब-करीब बन्द कर रहा हूँ।

खबर पहुँचा दी गयी है—**अब जिसे खोजना है, वह मुझे खोज लेगा।**

और जिसे नहीं खोजना है, मैंने भलीभाँति उसके द्वार पर भी दस्तक देकर देख ली है!

रजनीश के प्रणाम

१६-१-१९७१

[प्रति : श्री ओमप्रकाश अग्रवाल, एन० के १७५, चरणजीतपुर, जालंधर, पंजाब]

मेरे प्रिय,

प्रेम। मेरी यात्राएँ करीब-करीब पूरी हो गयी हैं।

जिनसे किसी जन्म में किये गये वायदे थे, वे मैंने निभा दिये हैं।

अब तो मैं एक ही जगह रुकूँगा।

जिन्हें आना है, वे आ जावेंगे।

वे सदा ही आ जाते हैं।

और शायद इस भाँति मैं उनके ज्यादा काम भी आ सकूँ **जिन्हें कि वस्तुतः मेरी जरूरत है।**

विस्तृत कार्य कर चुका—अब गहन कार्य में लगता हूँ।

पुकार आया गाँव-गाँव लोगों को, अब उनके आने की प्रतीक्षा करता हूँ।

ऐसा ही है आदेश अब अंतर का।

और उस आदेश से अन्यथा न तो मैंने कभी कुछ किया है, न कर ही सकता हूँ।

वहाँ सबको मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम

१६-१-१९७१

[प्रति : श्री हीरालालजी कोठारी, दाँत भेरू, उदयपुर, राजस्थान]

७४ / सम्यक् निष्कर्षों का जन्म—धैर्यपूर्ण प्रतीक्षा से

प्यारी मीरा,

प्रेम। मार्ग में सदा ही कठिनाइयाँ हैं—लेकिन साधक के लिए सभी कठिनाइयाँ अंततः सहयोगी ही होती हैं।

प्रभु के मार्ग पर काँटे भी हैं; लेकिन उन्हीं के लिए जो कि मात्र दर्शक ही हैं—लेकिन, जो उस मार्ग पर चलता है उसके लिए **दूर से जो काँटे दिखाई पड़ते थे; वे ही पास आने पर फूलों में परिणत हो जाते हैं।**

यह मैं अपने अनन्त अनुभवों के आधार पर कहता हूँ।

और जानता हूँ कि शीघ्र ही तू भी मेरी गवाही देगी।

संसार के मार्ग में और धर्म के मार्ग में यही आधारभूत अन्तर है : संसार के मार्ग पर दूर से जो फूल मालूम होते हैं, वे निकट आने पर काँटे सिद्ध होते हैं—और धर्म के मार्ग पर ठीक उल्टी ही घटना घटती है।

संसार के मार्ग की गवाही तो कोई भी दे सकता है न ?

और यदि दूर से दिखाई पड़ने वाले फूल अंततः काँटे निकल सकते हैं, तो इससे उल्टा होने में बाधा ही क्या है ?

फिर भी मेरी बात मानना काफी नहीं है—चल और देख।

और जल्दी निष्कर्ष लेने की आदत छोड़।

जीवन अत्यन्त जटिल है—उसकी सरलता भी परम जटिलता है—इसलिए निष्कर्षों की जल्दी न करना—धैर्यपूर्ण प्रतीक्षा सम्यक् निष्कर्षों को स्वतः चित्त के द्वार पर ले जाती है।

डॉ० को प्रेम।

वहाँ सबको प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम

१६-१-१९७१

[प्रति : माँ योग मीरा, कडियावाड़, जूनागढ़, गुजरात]

७५ / वही है—अब मैं कहाँ हूँ ?

प्यारी तृप्ता,

प्रेम। मेरी **याद** आती है तो **उसमें ही लीन** हो।

वही प्रभु का द्वार बन जायेगी।

आँखों में **आँसू** भर जावें तो **उनके** साथ ही एक हो जा।

वे ही प्रभु के मार्ग बन जावेंगे।

असली बात है : खोना—स्वयं को खोना।

क्योंकि जो स्वयं को खोता है, वह उसे पा लेता है।

अपने आपको बचाना भर नहीं।

इतना ही ध्यान तू रख।

और शेष मुझ पर छोड़ दे।

मुझ पर यानी उसी पर।

क्योंकि, अब मैं कहाँ हूँ ?

रजनीश के प्रणाम

१६-१-१९७१

[प्रति : श्रीमती तृप्ता सिंगल, मकान नं० एन. के. ११६, चरणजीतपुरा, जालन्धर शहर, पंजाब]

७६ / तीन सूत्र—साक्षी-साधना के

प्रिय अक्षय भारती,

प्रेम। साक्षी-भाव की साधना के लिए इन तीन सूत्रों पर ध्यान दो :

१. संसार के कार्य में लगे हुए **श्वास के आवागमन के प्रति जागे हुए रहो।** शीघ्र ही साक्षी का जन्म हो जाता है।

२. भोजन करते समय **स्वाद के प्रति होश रखो।** शीघ्र ही साक्षी का आविर्भाव होता है।

३. निद्रा के पूर्व जब कि नींद आ नहीं गयी है और जागरण जा रहा है—**सम्हलो और देखो।** शीघ्र ही साक्षी पा लिया जाता है।

रजनीश के प्रणाम

१६-१-१९७१

[प्रति : स्वामी अक्षय भारती, श्री बी० जी० उपाध्याय, राजपुरा नं. २, वाया : तनसा (बी० एम० टी०), भावनगर, गुजरात]

७७ / उसकी ही मर्जी पर सब छोड़ा है

मेरे प्रिय,

प्रेम। जीसस की भाँति मारे जाने से बड़े सौभाग्य की और क्या बात हो सकती है?

वैसा तो तभी होता है जबकि परमात्मा किसी के जीवन से नहीं, वरन् **किसी की मृत्यु से भी काम** लेना चाहता है।

मैंने तो स्वयं को उसकी ही मर्जी पर छोड़ा है।

अब तो उसके ही भरोसे है जीवन—और उसके ही भरोसे है मृत्यु।

और इसलिए अब जीवन और मृत्यु में भी कोई भेद नहीं रहा है।

वह भेद ही स्वयं के भरोसे चलने से पैदा होता है।

अहंकार के अतिरिक्त जीवन और मृत्यु में और कोई भेद-रेखा नहीं है।

और अहंकार के अतिरिक्त सिंहासन और सूली में भी क्या भेद है?

रजनीश के प्रणाम

१६-१-१९७१

[प्रति : श्री जनकराय एस० व्यास, सरकारी अध्यापन मंदिर, ध्रौल, जि. जामनगर, गुजरात]

७८ / मंजिल के लिए मार्ग का अतिक्रमण आवश्यक

मेरे प्रिय,

प्रेम। मंजिल तो अंततः मार्ग के अतिक्रमण (Transcendence) से ही आती है।

क्योंकि, जहाँ तक मार्ग है, वहाँ तक मंजिल कहाँ ?

मार्ग को पकड़ना भी पड़ता है और फिर छोड़ना भी।

निश्चय ही पकड़ना आसान और छोड़ना कठिन है।

क्योंकि, मन साधना को ही साध्य बना लेता है।

मन की माया इसी विधि पर ही तो आधारित है।

इसलिए तो संप्रदाय धर्म से भी महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं।

साधन की भाँति तो वे ठीक हैं, खतरा उनके साध्य बनने से पैदा होता है।

फिर भी प्रत्येक व्यक्ति **अपने ही मार्ग से** चलता है।

और प्रत्येक को **अपना ही मार्ग** छोड़ना पड़ता है।

यद्यपि जहाँ पहुँचा जाता है, वह भिन्न-भिन्न नहीं है।

फिर भी जैसे ही उस अनुभव को व्यक्त किया, वह पुनः **भिन्न-भिन्न मालूम** होने लगता है।

क्योंकि, **भाषा मार्गों से मिलती है और मंजिल मौन है।**

क्योंकि, अभिव्यक्ति तो होगी शब्दों में और अनुभूति मौन है।

रजनीश के प्रणाम

१६-१-१९७१

[प्रति : डा० विद्याचरण शाह, हीराबाग धर्मशाला, बम्बई–४]

७९ / पिछले जन्मों के वायदे

मेरे प्रिय,

प्रेम। ऐसा विगत जन्म में दिया गया अनेक मित्रों को **मेरा आश्वासन था कि जब सत्य मिले तो मैं उन्हें खबर कर दूंगा।**

वह खबर मैं कर चुका।

भारत में मेरी यात्राएँ इसलिए अब समाप्त ही हैं।

निश्चय ही भारतेतर मित्र भी कुछ हैं––उनसे संबंध-सेतु बना रहा हूँ।

यद्यपि, मित्रों को **लिये गये वायदे** की कुछ भी खबर नहीं है––आपको ही कहाँ है––लेकिन, मुझे जो ज्ञात है उसे करना अनिवार्य है।

अब साधारणतः मैं एक ही जगह रुकूँगा।

इससे साधकों पर ज्यादा ध्यान भी दे सकूँगा।

और जिन्हें सच ही जरूरत है, उनके ज्यादा काम भी आ सकूँगा।

वहाँ सबको मेरे प्रणाम कहें।

रजनीश के प्रणाम

१६-१-१९७१

[प्रति : श्री मथुरा प्रसाद मिश्र, जीवन-जागृति केंद्र, पथ १. राजेन्द्रनगर, पटना–१६, बिहार]

प्रिय कन्हैया,

प्रेम। शक्ति तो है स्वयं में बहुत--जैसे छोटा-सा कुआँ भी अन्ततः अनन्त सागर से जुड़ा है--ऐसे ही तुम भी जुड़े हो !

लेकिन, न बेचारे कुएँ को अनन्त सागर का पता है, न तुम्हें ही !

पर कुएँ को माफ किया जा सकता है--तुम्हें नहीं।

निर्वीर्य तुम अपने हाथों बने हो।

और **बिना हारे ही व्यर्थ हार गये हो।**

हार कर भी हारने में एक शोभा है--शान है।

चल कर भटक जाने की भी अपनी गरिमा है।

चढ़ने की कोशिश में गिर जाने का भी गौरव है।

लेकिन, उन्हें क्या कहा जाये जो इस डर से कभी चले ही नहीं कि कहीं भटक न जावें।

और तुम उन्हीं में से एक हो।

लेकिन अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है : **उठो और चलो।**

भूलें होती हैं, लेकिन सिर्फ उन्हीं से, जो कुछ करते हैं।

कुछ न करने वालों से कभी कोई भूल नहीं होती है, लेकिन **कुछ न करने से बड़ी और क्या भूल हो सकती है ?**

रजनीश के प्रणाम

१६-१-१९७१

[प्रति : कन्हैया गौरक्षक, महात्मा गांधी मार्ग, जालना, महाराष्ट्र]

मेरे प्रिय,

प्रेम। प्रतीक्षा कब तक ?

समय तो सदा ही थोड़ा है !

और, कल का कोई भी भरोसा नहीं है।

साहस करें--संकल्प करें।

संसार को नहीं--स्वयं को देखें।

शुभ को कभी स्थगित न करें।

अशुभ को सदा स्थगित करें।

लेकिन, क्या अभी इससे ठीक उल्टा नहीं कर रहे हैं ?

रजनीश के प्रणाम

१६-१-१९७१

[प्रति : डॉ० हेमन्त शुक्ला, जूनागढ़, गुजरात]

प्यारी कुसुम,

प्रेम। एक मछली ने एक दिन मछलियों की रानी से पूछा : "मैं सदा से सागर के संबंध में सुनती आ रही हूँ, पर यह सागर है क्या? और है भी या नहीं? और है तो कहाँ है?"

मछलियों की रानी हँसी और बोली : "पागल! तू सागर में ही जीती है, तैरती है, श्वास लेती है--तेरा सारा अस्तित्व ही सागर में है! सागर ही तेरे भीतर है और सागर ही तेरे बाहर है। सागर से ही तू जन्मी है, सागर से ही तू निर्मित है और अंततः सागर में ही लीन हो जाना तेरी नियति है।"

मछली ने सुना, पर शायद सुना नहीं!

मनुष्य ही कहाँ सुनता है--सो वह तो थी बेचारी मछली!

या सुना भी तो मछली समझी नहीं!

मनुष्य ही कहाँ समझता है?

उसने चारों ओर देखा--पर सागर कहीं दिखाई नहीं पड़ा!

सोचा; शायद सागर अदृश्य है!

आह! मछलियाँ भी कितना मनुष्यों-जैसा ही सोचती हैं?

और फिर यह भी सोचा कि शायद मैं अपात्र हूँ और इसलिए ही सागर से मिलन नहीं होता है!

और मैं सोचता हूँ कि वह मछली थी या मनुष्य?

तुझसे भी पूछता हूँ, तू भी बता : वह मछली थी या मनुष्य?

कपिल को प्रेम।

असंग को आशीष।

रजनीश के प्रणाम

१६-१-१९७१

[प्रति : सुश्री कुसुम c/o श्री कपिल मोहन चान्धोक क्वाल्टी आइसक्रीम, ९० ए, इंडस्ट्रियल एरिया, लुधियाना, (पंजाब)]

मेरे प्रिय,

प्रेम! जो होता हो होने दें--आप तो अब ऐसे हो रहें कि **जैसे हैं** ही नहीं।

किसी को किसी बात में बाधा न दें।

सलाह नहीं--सुझाव नहीं।

कोई पूछे तो बात और।

तब जो सहज सूझे वही कह दें।

और फिर भूल जावें कि क्या कहा--क्या नहीं कहा।

यह तो ध्यान में रखें ही नहीं कि जो कहा वह माना गया या नहीं माना गया।

प्रतिपल जियें।

प्रतिपल अतीत के बाहर होते रहें।

प्रतिपल से ज्यादा जीवन नहीं है।

साँझ सोवें तो जानें कि अंतिम साँझ है।

सुबह उठें तो नये--कल के प्रति समग्ररूपेण मुक्त हुए।

स्मरण रखें : सब शून्य है।

पानी में उठे बबूलों-जैसा सब रिक्त है।

और इस रिक्तता में तैरा तो जा ही नहीं सकता है।

इसलिए बहें।

लक्ष्यहीन--प्रयास-मुक्त।

जैसे कभी आकाश में चील तिरती है--निश्चेष्टः ऐसे ही।

रजनीश के प्रणाम

१६-१-१९७१

[प्रति : श्री सुन्दरलालजी जैन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलोरोड, जवाहरनगर, दिल्ली-७]

प्रिय जयंत,

प्रेम ! **मनुष्य एक तनाव है--पशु और प्रभु के बीच।**

मनुष्य अवस्था नहीं**--बस एक संक्रमण है।**

यही उसका सौभाग्य भी है और यही उसकी पीड़ा भी।

शायद कोई सौभाग्य पीड़ा के नहीं हो सकता है, इसीलिए।

शिखर बिना खड्ड-खाइयों के होना भी चाहें तो कैसे हो सकते हैं ?

इसलिए मनुष्य होना एक चिन्ता है--एक गहन संताप।

या तो पशु होने में विश्राम है, या प्रभु होने में।

पशु में वही विश्राम है जो कि अज्ञान और अंधकार और निद्रा की मूर्च्छा में है।

और प्रभु में वही विश्राम है जो कि ज्ञान, मुक्ति और प्रकाशोपलब्धि में है।

फिर मनुष्य होकर कोई पशु होना भी चाहे तो नहीं हो सकता है।

क्योंकि, वापस पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं है।

इसलिए, बढ़ो आगे--खोजो स्वयं में छिपे प्रभु को।

तोड़ो बीज और बनो वृक्ष।

रजनीश के प्रणाम

१६-१-१९७१

[प्रति : श्रीयुत जयंतकुमार, लोहानीपुर, कदमकुआँ, पटना-३, बिहार]

प्यारी रंजना,

प्रेम ! स्वप्नों में मत खोना।

खोना तो प्रीतिकर लगता है, लेकिन फिर सब स्वप्न टूटते हैं--टूटते ही हैं; और बहुत तिक्त और कड़ुवा स्वाद प्राणों में छोड़ जाते हैं।

और ध्यान रखना कि कोई भी अपवाद (Exception) नहीं है।

यद्यपि प्रत्येक का मन स्वयं को और स्वयं के स्वप्नों को अपवाद मानने का होता है !

जीवन को बना प्रारंभ से ही सत्य पर--यथार्थ पर।

शायद, स्वप्नों जैसा सुखद न भी लगे लेकिन जैसे-जैसे सत्य में गहरे उतरना होता है, वैसे ही रस के नये-नये झरने प्राप्त होते चलते हैं।

स्वप्नों के मार्ग से स्वर्ग तक कोई कभी नहीं पहुँचा है।

स्वर्ग के द्वार का नाम है : सत्य।

स्वप्न प्रलोभन स्वर्ग का देते हैं--लेकिन पहुँचा देते हैं सदा ही--अचूक नर्क में।

रजनीश के प्रणाम

१६-१-१९७१

[प्रति : सुश्री रंजना, c/o श्री जयंतकुमार, लोहानीपुर, कदम कुआँ, पटना-३]

८६ / श्रद्धा का दुर्लभ द्वार

प्यारे किरण,

प्रेम ! जानता हूँ तुम्हारे आनंद को।

जानता हूँ तुम्हारी छलाँग को।

तुमने जाना, उससे भी पहले से जानता हूँ।

बीज छिपा था।

तुम तो जानते भी कैसे ?

पर अंकुरित होने की अभीप्सा थी--और उससे तुम भलीभाँति परिचित थे।

अब बीज में पहला अंकुर फूटा है तो तुम स्वयं की संभावना से पहली बार परिचित हुए हो।

अंकुर वृक्ष भी बनेगा।

और अनंत फूल भी उस वृक्ष पर खिलेंगे।

यह भी तुम अभी कैसे जानोगे ?

होने के पहले तो जानने का कोई उपाय ही नहीं है न ?

लेकिन अब तुम **अनुमान** कर सकते हो।

और अज्ञात में **भरोसा** भी।

इसे ही मैं श्रद्धा कहता हूँ।

अब श्रद्धा प्रारंभ होती है तुम्हारे जीवन में।

इस अमूल्य क्षण में मेरी समस्त प्रार्थनाएँ तुम्हारे साथ हैं।

रजनीश के प्रणाम

२०-१-१९७१

[प्रति : श्री किरण, पूना]

८७ / स्वयं से मिले कि मुझसे मिले

मेरे प्रिय,

प्रेम। बाहर न खोजें मुझे।

वहाँ मैं मिलूँ तो भी मिलन न हो सकेगा।

खोजें भीतर।

वहाँ न भी मिलूँ तो मिलन हो सकेगा।

स्वयं से मिले कि मुझसे मिले।

रजनीश के प्रणाम

२०-१-१९७१

[प्रति : श्री गोपाल नारायण मोहले, वाणिज्यकर अधिकारी, ब्यावर, राजस्थान]

८८ / अनन्य (अपने) के साथ कैसा भय !

प्रिय मंजु,

प्रेम।

मैं अन्य होता तो निर्भरता (Dependence) का भय तुझे हो सकता था !

लेकिन मैं अन्य तो नहीं हूँ न ?

अनन्य के साथ भय नहीं है।

सब भय--भय मात्र 'पर' (The others) के साथ है ।

'मैं-तू' का सब पागलपन छोड़ !

जो है वह न मैं है, न तू है।

अब उसी में डूब, अब उसी में जी।

अब सब मैं--तू छोड़ बस एक ही शरण में ही आ।

'मामेकं शरणं ब्रज।'

रजनीश के प्रणाम

२०-१-१९७१

[प्रति : सुश्री मंजु शाह, घाटकोपर बम्बई-८९]

८९ / दिये की परीक्षा--आँधियों में ही

प्यारी शिरीष,

प्रेम। लगता है कि तेरे ध्यान के दिये में अब ज्योति पकड़ गयी है !

अब उसे सम्हालना।

बुझे दिये के पास तो सम्हालने को कुछ भी नहीं होता है--लेकिन दिये के जलते ही आँधियाँ परीक्षा लेने को आ जाती हैं।

रजनीश के प्रणाम

२१-१-१९७१

[प्रति : सौ० शिरीष पै, बम्बई]

प्यारे चीनु,

प्रेम। प्रेम फूटेगा।

प्रेम का झरना बहेगा।

प्रेम के फूटने और बहने की आतुरता से ही तो तुम आन्दोलित हो।

उसी से तो हृदय कंपित है।

उसी से तो आँखों की नींद खो गयी है।

अतिथि की प्रतीक्षा जो है।

उसकी पगध्वनि भी सुनाई पड़ती है।

उसकी सुगन्ध भी आती है।

इसलिए तो बेचैनी और भी ज्यादा है।

भोर फूटने के पहले जैसे रात का अंधेरा बढ़ जाता है, ऐसे ही मिलन के पूर्व विरह की पीड़ा भी बढ़ जाती है।

सहो इस पीड़ा को, क्योंकि यह सौभाग्य है।

रजनीश के प्रणाम

२१-१-१९७१

[प्रति : श्री चीनु बी० शाह, अहमदाबाद]

मेरे प्रिय,

प्रेम। बढ़ो आगे निर्भय हो।

क्योंकि प्रभु सदा साथ है।

अंधकार है केवल उन्हीं के लिए जो कि भयभीत हैं।

भय के अतिरिक्त और कोई अंधकार नहीं है।

अभय आलोक है।

अभय पूर्वक ध्यान में उतरो।

अभय के मार्ग से ध्यान के मंदिर में प्रवेश करो।

देखो——मंदिर के द्वार सदा ही खुले हैं।

लेकिन, भय से भरे चरण उठ ही नहीं पाते हैं।

एक कदम उठाओ तुम तो हजार कदम तुम्हारी ओर स्वयं प्रभु भी उठाता है।

आह! धर्म का मार्ग अद्भुत् है। क्योंकि तुम्हीं नहीं चलते हो मंदिर की ओर, वरन् मंदिर भी तुम्हारी ओर चलता है।

रजनीश के प्रणाम

२२-१-१९७१

[प्रति : श्री गोपाल नारायण मोहले, ब्यावर, राजस्थान]

९२ / स्वयं को पाना हो तो दूसरों पर ज्यादा ध्यान मत देना

प्रिय कृष्ण चैतन्य,

प्रेम। फकीर झुगान (Zuigan) सुबह होते ही जोर से पुकारता : "झुगान ! झुगान !"

सूना होता उसका कक्ष।

उसके सिवाय और कोई भी नहीं।

सूने कक्ष में स्वयं की ही गूँजती आवाज को वह सुनता : "झुगान ! झुगान !"

उसकी आवाज को आसपास के सोये वृक्ष भी सुनते।

वृक्ष पर सोये पक्षी भी सुनते।

निकट ही सोया सरोवर भी सुनता।

और फिर वह स्वयं ही उत्तर देता : "जी ! गुरुदेव ! आज्ञा ! गुरुदेव !"

उसके इस प्रत्युत्तर पर वृक्ष हँसते।

पक्षी हँसते।

सरोवर हँसता।

और फिर वह कहता : "ईमानदार बनो, झुगान ! स्वयं के प्रति ईमानदार बनो !"

वृक्ष भी गंभीर हो जाते।

पक्षी भी।

और वह कहता : "जी ! गुरुदेव !"

और फिर कहता : **"स्वयं को पाना है तो दूसरों पर ज्यादा ध्यान मत देना।"**

वृक्ष भी चौंक कर स्वयं का ध्यान करते।

पक्षी भी।

सरोवर भी।

और झुगान कहता : "जी, हाँ ! जी, हाँ !"

और फिर इस एकालाप के बाद झुगान बाहर निकलता तो वृक्षों से कहता : "सुना ?"

पक्षियों से कहता : "सुना ?"

सरोवर से कहता : .."सुना ?"

और फिर हँसता।

कहकहे लगाता।

कहते हैं वृक्षों को, पक्षियों को, सरोवरों को उसके कहकहे अभी भी याद हैं।

लेकिन, मनुष्यों को ?

नहीं——मनुष्यों को कुछ भी याद नहीं है।

लेकिन, प्यारे कृष्ण चैतन्य——तुम याद रखना।

तुम मत भूलना।

यह मनो-नाटक (Monc-Drama) तुम्हारे बड़े काम का है।

इसका तुम रोज अभ्यास करना।

सुबह उठ कर——उठते ही बुलाना जोर से——"कृष्ण चैतन्य !"

ध्यान रहे कि धीरे नहीं——बुलाना है जोर से।

इतने जोर से कि पास-पड़ोस सुने : "कृष्ण चैतन्य !"

फिर कहना : "जी ! गुरुदेव !"

फिर कहना : "स्वयं को पाना है तो दूसरों पर ज्यादा ध्यान मत देना !"

और फिर कहना : "जी, हाँ ! जी, हाँ !"

और यह सब इतने जोर से कहना कि तुम्हें ही नहीं, औरों को भी इसका लाभ हो।

फिर हँसते हुए बाहर आना।

कहकहे लगाना।

और हवाओं से पूछना : "सुना ?"

बादलों से पूछना : "सुना ?"

रजनीश के प्रणाम

२२-१-१९७१

[प्रति : श्री स्वामी कृष्ण चैतन्य, संस्कार-तीर्थ, आजोल, गुजरात]

९३ / एक मिट गये व्यक्ति का रहस्य

प्यारी सावित्री,

प्रेम । निश्चय ही मेरी आँखों में देखेगी तू तो शान्त हो ही जायेगी ।
क्योंकि, उन आँखों के पीछे **'मैं' जो नहीं हूँ** ।
और जो है, उसके संबंध में कुछ न कहना ही उचित है ।
क्योंकि उसके संबंध में कुछ कहा ही नहीं जा सकता है ।
फिर कहे भी कौन ?
और कहे किससे ?
इसलिए, मौन ही वहाँ वाणी है ।
और मौन ही वहाँ मुखरता है ।

रजनीश के प्रणाम
२२-१-१९७१

[प्रति : डॉ० सावित्री पटेल, पो० किल्ला पारडी, बलसार]

९४ / अशरीरी के अस्वस्थ होने का उपाय ही कहाँ है ?

प्यारी शिरीष,

प्रेम । जान कर ही शरीर की बात नहीं लिखी थी ।
जो मैं नहीं हूँ——उसकी बात लिखने की बात ही कहाँ है ?
और जबसे यह जन्म तब से **मेरे अस्वस्थ होने का उपाय ही नहीं** रहा है ।
शरीर में जरूर परिवर्तन होते रहते हैं ।
उसे तो न होने की तैयारी भी करनी पड़ती है न ?

रजनीश के प्रणाम
२२-१-१९७१

[प्रति : सौ० शिरीष पै, बम्बई]

९५ / नाव सामने है, फिर चिंता कैसी ?

मेरे प्रिय,

प्रेम। समय पर--ठीक समय पर ही वह नाव मिलती है, जो कि पार ले जाती है।

ऐसा नहीं कि नाव पहले नहीं थी।

नाव तो सदा है, लेकिन यात्री को जब तक पार न जाना हो तब तक वह दिखाई नहीं पड़ती है।

ऐसा भी नहीं है कि नाव अदृश्य है।

नाव तो सदा ही आँखों के सामने है, लेकिन जब तक यात्री को पार नहीं जाना है तब तक **उसका ध्यान ही नाव पर नहीं जाता है।**

लेकिन, अब चिंता न करो।

तुम्हें पार जाना है।

नाव सामने है।

फिर चिन्ता कैसी ?

रजनीश के प्रणाम

२२-१-१९७१

[प्रति : श्रीकृष्णदत्त दीक्षित, १२।३४६, बेलासिस ब्रिज, तारदेव, बम्बई–३४]

९६ / दो ही विकल्प--आत्म-घात या आत्म-क्रांति

प्यारी बकुल,

प्रेम। परिस्थिति नहीं--तेरी मनःस्थिति ही दोषी है।

ऐसी मनःस्थिति हो तो किसी भी परिस्थिति में दुःख उत्पन्न होता है।

महत्त्वाकांक्षा दुःख की जननी है।

अति-महत्त्वाकांक्षा विक्षिप्तता की।

मन को पहचान अपने।

वही तुझे रुग्ण किये है।

शरीर भी उससे ही प्रभावित है।

दोष ही खोजना है तो स्वयं में खोज।

क्योंकि, तब कुछ किया जा सकता है।

दूसरों में दोष खोजना खाज को खुजलाने जैसा है।

उससे रोग और बढ़ता है, घटता नहीं।

क्योंकि, मूल कारण सदा स्वयं में हैं।

और दूसरों में दोष देखने से वे और भी सुरक्षित होते हैं।

इस भाँति हम स्वयं ही अपने रोगों का पोषण करते हैं।

यह वृत्ति क्रमिक आत्मघात है।

और आत्मघात (Suicide) या आत्म-क्रांति (Self-Transformation) बस दो ही विकल्प हैं।

इन दो में से एक तुझे चुनना है।

और बिना सचेतन चुनाव किये जीती रहेगी तो ऐसा मत सोचना कि चुनाव से बच रही है।

चुनाव से बचा ही नहीं जा सकता है।

न चुनना--पहले विकल्प को चुनना है।

रजनीश के प्रणाम

२२-१-१९७१

[प्रति : सुश्री बकुल, बम्बई]

९७ / संन्यास संकल्प नहीं, समर्पण है

मेरे प्रिय,

प्रेम। सोच-विचार कैसा ?

क्षण का भी तो भरोसा नहीं है।

समय तो प्रतिपल हाथ से चुकता हो जाता है।

और मृत्यु न पूछ कर आती है।

न बता कर ही।

फिर **संन्यास** का अर्थ है : सहज जीवन।

वह आरोपण नहीं; विपरीत समस्त आरोपणों से मुक्ति है।

संन्यास **तुम्हारा निर्णय** भी नहीं है।

वह तो तुम से ही छुटकारा जो है।

संन्यास संकल्प नहीं, समर्पण है।

रजनीश के प्रणाम

२२-१-१९७१

[प्रति : श्री शिव, जबलपुर, म० प्र०]

९८ / जो मूर्च्छित है, उसे होशपूर्वक करो

मेरे प्रिय,

प्रेम। मैं तुम्हारी कठिनाई समझा।

लेकिन, उससे लड़ कर तुम उसे और भी जटिल बना रहे हो।

लड़ो मत।

वरन्, चलने के जिस ढंग से तुम बचना चाहते हो, जानबूझ कर वैसे ही चलो।

न तो मानस-शास्त्रियों के उलझाव में पड़ो।

और न अब भविष्य में बिजली के शॉक ही लो।

यदि तुम जान-बूझकर, होशपूर्वक, सचेष्ट, नपुंसकों जैसे चल सको, जैसे कि अभी तुम मजबूरी में और मूर्च्छित हो चलने लगते हो तो शीघ्र ही तुम इस आदत के बाहर हो जाओगे।

अनायास ही।

तुम्हारी मनस-चिकित्सा का मूल सूत्र लिखता हूँ : **जो मूर्च्छित है, उसे होशपूर्वक करो या जो अनैच्छिक** (Non-voluntary) **है उसे ऐच्छिक** (Voluntary) **बनाओ।**

क्योंकि, हम अनैच्छिक से मुक्त नहीं हो सकते हैं।

मुक्त तो हम उससे ही हो सकते हैं जो कि ऐच्छिक है।

इसलिए, अनैच्छिक से मुक्त होने के पूर्व उसे ऐच्छिक में रूपांतरित करना अति आवश्यक है।

रजनीश के प्रणाम

२३-१-१९७१

[प्रति : एक साधक, पूना]

प्यारे चीनु,

प्रेम। **संक्रमण के क्षण में जीवन शुष्क हो जाता है।**

पुराना जा रहा होता है इसलिए।

परिचित विदा होता है इसलिए।

जाने-माने रोगों तक से एक भराव होता है।

जंजीरें तक आदत बन जाती हैं।

वर्षों का कैदी जब कारागृह के बाहर आकर खड़ा होता है तो जैसा अस्त-व्यस्त हो जाता है, ऐसी ही तुम्हारी स्थिति भी है।

लेकिन शीघ्र ही नया अंकुरित होगा।

नये मार्ग पर चरण पड़ेंगे।

अज्ञात से मिलन होगा।

और ऐसी हरियाली से जीवन भर जायेगा जो कि फिर कभी मुरझाती नहीं है।

रजनीश के प्रणाम

२३-१-१९७१

[प्रति : श्री चीनु बी० शाह, अहमदाबाद]

प्रिय धर्म समाधि,

प्रेम। प्रकाश बढ़ेगा।

ध्यान के साथ-साथ ही प्रकाश भी बढ़ेगा।

फिर तो तू भी मिटेगी और प्रकाश ही बचेगा।

जब जानना (Knowing) ही **बचता है** और जानने वाला (Knower) भी खो जाता है, तभी जानना कि जानना प्रारंभ हुआ है।

अधिकतम शक्ति और समय और संकल्प साधना के लिए है।

क्योंकि **शेष सब** अंततः जीवन का अपव्यय सिद्ध होता है।

ध्यान रख कि **स्वयं को जाना तो सब जाना और स्वयं को पाया तो सब पाया।**

फिर साधना का अवसर अत्यंत दुर्लभ भी है।

मनुष्य होना ही कितनी लम्बी यात्रा के बाद संभव हो पाता है?

रजनीश के प्रणाम

२३-१-१९७१

[प्रति : मा धर्म समाधि, बम्बई]

१०१ / अवसर बार-बार नहीं आते

मेरे प्रिय,

प्रेम। मन है संन्यास का तो डूबो।

फिर स्थगन ठीक नहीं।

प्रभु जब पुकारे तो चल पड़ो।

फिर रुकना ठीक नहीं।

क्योंकि, अवसर द्वार पर बार-बार आये कि न आये।

रजनीश के प्रणाम

२३-१-१९७१

[प्रति : श्री शिव, जबलपुर, म० प्र०]

१०२ / समय के पूर्व शक्ति का जागरण हानिप्रद

प्यारी समाधि,

प्रेम। तृतीय नेत्र (Third Eye) की चिन्ता में तू न पड़।

आवश्यक होगा तो मैं तुझसे उस दिशा में कार्य करने को कहूँगा।

वह तेरी संभावना के भीतर है और बिना ज्यादा श्रम के ही सक्रिय भी हो सकता है।

लेकिन, तू स्वयं उत्सुकता न ले।

समय के पूर्व शक्ति का जागरण बाधा भी बन सकता है।

और मूल-साधना से भटकाव भी।

फिर सत्य के साक्षात्कार के लिए वह आवश्यक भी नहीं है।

और अनिवार्य तो बिलकुल ही नहीं।

कभी-कभी कुछ शक्तियाँ अनचाहे भी सक्रिय हो जाती हैं; लेकिन उनके प्रति भी उपेक्षा (Indifference) आवश्यक है।

और नये सोपान पर गतिमय होने में सहयोगी भी।

अब जब मैं तेरी चिन्ता करता हूँ तो तू सब चिन्ताओं से सहज ही विश्राम ले सकती है।

रजनीश के प्रणाम

२३-१-१९७१

[प्रति : मा योग समाधि, राजकोट, गजरात]

प्रिय विमला,

प्रेम। **मन के रहते शांति कहाँ ?**

क्योंकि, वस्तुतः मन ही अशांति है।

इसलिए शांति की दिशा में मात्र विचार से, अध्ययन से, मनन से कुछ भी न होगा।

विपरीत मन और सबल भी हो सकता है; क्योंकि वे सब मन की ही क्रियाएँ हैं।

हाँ--थोड़ी देर को विराम जरूर मिल सकता है; जो कि शांति नहीं, बस अशांति का **विस्मरण** मात्र है।

इस विस्मरण की मादकता से सावधान रहना।

शांति चाहिए तो मन को खोना पड़ेगा।

मन की अनुपस्थिति ही शांति है।

साक्षीभाव (Witnessing) से यही होगा।

विचार, कर्म--सभी क्रियाओं की साक्षी बनो।

कर्त्ता न रहो।

साक्षी बनो।

पल-पल साक्षी होकर जियो।

जो भी करो--साक्षी रहो--**जैसे कि कोई और कर रहा है और मात्र गवाह हो।**

फिर धीरे-धीरे मन भोजन न पाने से निर्बल होता जाता है।

कर्त्ता-भाव मन का भोजन है।

अहंकार मन का ईंधन (Fuel) है।

और जिस दिन ईंधन बिलकुल नहीं मिलता है, उसी दिन मन ऐसे तिरोहित हो जाता है कि **जैसे कभी रहा ही न हो।**

रजनीश के प्रणाम

२३-१-१९७१

[प्रति : सुश्री विमला सिंहल, नीमच, म० प्र०]

प्यारी अरुण,

प्रेम। निकट ही है साम्राज्य।

लेकिन, अपनी ही भूल से हम भिखारी हैं।

क्योंकि, हम देखते हैं दूर।

लालच सदा ही दूर देखता है।

लोभ दूर देखता है।

काम दूर देखता है।

वासना मात्र दूरी पर जीती है।

और साम्राज्य है निकट।

निकट से भी निकट।

खजाने हैं भीतर--स्वयं में ही।

लेकिन, कामना का भिक्षापात्र दूर के लिए ही लालायित रहता है।

इसलिए जिसने दृष्टि दूर से हटायी, वही सम्राट् हो जाता है।

जिसने देखा निकट--जिसने देखा स्वयं में वह; वह सभी कुछ पा लेता है जो कि पाने योग्य है।

तू दूर से सावधान रहना।

निकट में डूब।

स्वयं में खोज।

तेरे लिए--और तेरे ही लिए क्यों, सबके ही लिए--यही साधना है।

रजनीश के प्रणाम

२३-१-१९७१

[प्रति : सुश्री अरुण, द्वारा श्री सरदारीलाल शर्मा, ५४६।२, प्रतापगली बाजार, अमृतसर, पंजाब]

प्यारी बकुल,

प्रेम। ऐसा ही है जीवन।

कथा किसी मूर्ख द्वारा कही हुई।

शोरगुल बहुत।

अर्थ कुछ भी नहीं।

पर जो उसे ऐसा जान लेता है; उसके लिए वह अर्थहीन भी नहीं रह जाता है।

अर्थहीनता की पीड़ा भी अर्थ की आकांक्षा का ही प्रतिफल है।

अर्थ की अभीप्सा नहीं, तो अर्थहीनता (Meaninglessness) का विषाद भी नहीं।

और मजा तो यह है कि जहाँ अर्थहीनता नहीं है, अर्थहीनता का विषाद नहीं है, वहीं और केवल वहीं अर्थ (Meaning) का––अर्थवत्ता का द्वार खुलता है।

रजनीश के प्रणाम

२३-१-१९७१

[प्रति : सौ. बकुल, बम्बई]

मेरे प्रिय,

प्रेम। सौभाग्यशाली हो कि प्रभु द्वारा पुकारे गये हो।

स्वयं को उसी के हाथों में समर्पित कर दो।

उसकी मर्जी को ही अपना जीवन बना लो।

समर्पण ही साधना है।

समर्पण-भाव के साथ ध्यान अपने आप ही गहरायेगा।

चिंता और दुविधा भी मिटेगी।

स्वयं ही न रहोगे तो चिन्ता कहाँ रहेगी?

अहंकार की छाया के अतिरिक्त दुविधा को अवकाश कहाँ है?

ध्यान की दिशा में श्रम करो।

अज्ञात––अतींद्रिय मार्ग से मैं सहायता करूँगा।

ध्यान के क्षण में मैं तुम्हारे निकट उपस्थित हो जाऊँगा।

रजनीश के प्रणाम

२३-१-१९७१

[प्रति : श्री त्रिलोचन त्रिपाठी, सतना, म० प्र०]

प्रिय नारायण,

प्रेम। जानता हूँ तुम्हारी प्यास।
जानता हूँ तुम्हारी पीड़ा।
लेकिन, यह तो तुम स्वयं भी जानते हो।
मैं तुम्हारी वास्तविकता को ही नहीं, तुम्हारी संभावना को भी जानता हूँ।
प्यास है; क्योंकि तृप्ति संभव है।
पीड़ा है; क्योंकि आनंद संभव है।
सब प्यास जो हो सकता है, उसके लिए है।
सब पीड़ा बीज के अंकुरित होने की अभीप्सा है।
इसलिए; प्यास पर रुकना नहीं है।
प्यास प्रारंभ है।
उससे आगे बढ़ना है।
उससे ही शक्ति लेकर आगे बढ़ना है।
पीड़ा को अंत नहीं बनाना है।
वह केवल मार्ग का कष्ट है।
प्रसव की प्रक्रिया है।
उस पर नहीं--ध्यान रखना है सदा मंजिल पर--नये जन्म पर।
और पीड़ा की शक्ति को भी ध्यान के इस प्रवाह में रूपांतरित करना है।
पीड़ा अपने में वर्तुलाकार हो तो नर्क बन जाती है।
और पीड़ा ही स्वर्ग भी बन जाती है यदि वह कहीं पहुँचाती है।
प्यास का अतिक्रमण करो--सरोवर की खोज में।
पीड़ा का अतिक्रमण करो--आनंद के अन्वेषण में।
और फिर प्यास वरदान है।
और पीड़ा आशीष है।

रजनीश के प्रणाम
२३-१-१९७१

[प्रति : श्री नारायण, (अब स्वामी अक्षय सरस्वती), जबलपुर, म० प्र०]

प्रिय मंजु,

प्रेम। **आश्वासन देता हूँ** कि जिसे जन्म-जन्म से तूने खोजा है; उसकी खोज इस जन्म में पूरी हो जायेगी।

सरिता सागर के निकट ही पहुँच गयी है, ऐसा देख रहा हूँ; इसलिए ही आश्वासन दे सकता हूँ।

बस एक मोड़ और--और सागर तेरे सामने होगा।

इसलिए, अब व्यर्थ की बातों में मत पड़।

व्यर्थ की अर्थात् बौद्धिक (Intellectual)!

रजनीश के प्रणाम
२३-१-१९७१

[प्रति : सुश्री मंजु शाह, घाटकोपर, बम्बई-८६]

प्यारी सावित्री,

प्रेम। मैं तुझे स्वप्न में दिखाई पड़ता हूँ, वह भी सत्य है।
क्योंकि, जो मैं तुझे सत्य में दिखाई पड़ता हूँ, वह भी स्वप्न है।
सत्य और स्वप्न भी दो नहीं हैं।
क्योंकि, अस्तित्व अद्वैत है।
ब्रह्म और माया भी दो नहीं हैं।
क्योंकि, अस्तित्व एक है।
इस एक पर ध्यान रख।
दो से भर सावधान रह।
जरा-सा भेद और पृथ्वी-आकाश का भेद पड़ जाता है।
इंच-भर दूरी और स्वर्ग और नर्क का फासला हो जाता है।

रजनीश के प्रणाम
२३-१-१९७१

[प्रति : डॉ० सावित्री पटेल, पोस्ट किल्ला पारडी, बलसार]

मेरे प्रिय,

प्रेम। आता हूँ तुम्हारे स्वप्न में भी।
और अभी तो तुम्हारा जागरण भी एक स्वप्न ही है!
तोड़नी है तुम्हारी निद्रा।
इसलिए, सब दिशाओं से तुम्हें पुकारता हूँ।
उन दिशाओं में स्वप्न की दिशा भी एक दिशा है।
और आनंदित हूँ कि तुम सुन भी पा रहे हो और समझ भी।
शीघ्र ही बहुत-कुछ होगा।
कुंडलिनी भी जगेगी।
और तुम भी जगोगे।
लक्षण शुभ हैं।
और सुबह करीब है।
ध्यान पर श्रम करो।
अथक।
और फलाकाँक्षा-रहित।

रजनीश के प्रणाम
२४-१-१९७१

[प्रति : श्री दाताराम रामलाल, ३६३, कत्था बाजार, बम्बई-९]

१११ / बुद्धि में मत उलझ--तू तो सीधे ध्यान में जा

प्यारी जयश्री,

प्रेम। तू कब से उलझी ?

उलझने दे पुष्कर को।

पर तू क्यों व्यर्थ के प्रश्नों में पड़ती है ?

तू तो सीधे ही ध्यान में जा।

तुझे जो आवश्यक नहीं है, उसे व्यर्थ ही सिर पर मत ढो।

मैं तुझे जैसा जानता हूँ, उससे कहता हूँ कि **तुझे स्वयं के द्वार में प्रवेश के पूर्व अन्यों के द्वारों को खटखटाने की आवश्यकता नहीं है।**

लेकिन, पुष्कर को शायद थोड़ा भटकना है।

भटकना ही पड़े।

पुरुष की प्रकृति का ही वह अंग है।

उसे भटकने दे--उसके लिए वह हितकर है।

स्वास्थ्यप्रद भी।

वह भी लौटेगा--लेकिन सीधे नहीं--भटक कर ही।

पर तुझे पत्नी होने के कारण इस भटकाव में छाया बनने की जरूरत नहीं है।

फिर ऐसा किसी शास्त्र में भी नहीं लिखा है !

रजनीश के प्रणाम

२४-१-१९७१

[प्रति : जयश्री गौकाणी, द्वारका, गुजरात]

११२ / जीवन उलझन नहीं--मनुष्य ही उल्टा है

मेरे प्रिय,

प्रेम। उलझनें खुलीं कब ?

खुलेंगी भी कभी नहीं ?

दर्शनशास्त्र का पूरा इतिहास सिवाय असफलता के और क्या है ?

क्योंकि, **उलझनें हैं नहीं, सिर्फ मनुष्य उल्टा है; इसलिए उलझनें दिखाई पड़ती हैं।**

जैसे कोई शीर्षासन में खड़ा हो और फिर सारी दुनिया उल्टी दिखाई पड़े !

बस, ऐसे ही उलझनें हैं, ऐसे ही सवाल हैं।

इसलिए मैं उनके उत्तर नहीं देता हूँ।

सिर्फ तुम्हें तुम्हारे शीर्षासनों से उतारने की कोशिश करता हूँ।

रजनीश के प्रणाम

२४-१-१९७१

[प्रति : पुष्कर गौकाणी, द्वारका, गुजरात]

११३ / साक्षी में ही समाधान है

प्रिय जया,

प्रेम। जीवन को व्यर्थ ही समस्या क्यों बनाती है ?

जीवन अपने में समस्या (Problem) नहीं है।

न ही अपने में समाधान ही है।

उसका समस्या या समाधान होना सदा ही **जीने वाले** पर निर्भर है।

अर्थात् तुझ पर।

न कुछ पकड़, न कुछ छोड़।

कर्त्ता न बन।

कर्त्ता बनी कि जीवन समस्या बना।

साक्षी बन।

क्योंकि, साक्षी में ही समाधान है।

रजनीश के प्रणाम

२४-१-१९७१

[प्रति : सुश्री जयवंती महेश्वरी, घाटकोपर, बम्बई-७७]

११४ / जगाये रखो संकल्प को

मेरे प्रिय,

प्रेम। खोजो प्रभु को।

और तब तक विश्राम नहीं।

जगाये रखो संकल्प को जैसे कि सर्द रात्रि में कोई अग्नि को जलाये।

भोर होने तक——सूर्योदय होने तक।

अँधेरी है रात्रि।

निराशा जैसी।

पर संकल्प (Will) है पास तो आशा की अग्नि ही है। और जानो भलीभाँति कि सुबह दूर नहीं है।

रजनीश के प्रणाम

२४-१-१९७१

[प्रति : बी० एल० नाग, स्टोर्स ऑफीसर, कलेक्टर ऑफ इन्सपेक्शन (ह्वीपन), जबलपुर]

११५ / ध्यान से प्रश्नों की निर्जरा

प्यारे चीनु,

प्रेम। उत्तर तो तुझे सब मालूम है।

फिर भी प्रश्न तो मिटते नहीं।

और जिन उत्तरों से प्रश्न न मिटें, वे उत्तर किस काम के हैं?

असल में वे उत्तर ही नहीं हैं।

सच तो यह है कि प्रश्नों के रहते उत्तर मिलते ही नहीं हैं।

प्रश्नों से मुक्ति ही अन्ततः उत्तर है।

इसलिए, ध्यान में डूबो और प्रश्नों को गिराओ।

ध्यान में प्रश्न ऐसे ही झड़ जाते हैं, जैसे कि पतझड़ में पत्ते।

और जहाँ प्रश्न नहीं हैं, वहीं उत्तर है।

यह भी स्मरण रखना कि जितने प्रश्न हैं, उतने उत्तर नहीं हैं।

प्रश्न अनंत हैं।

उत्तर एक ही है।

रजनीश के प्रणाम

२४-१-१९७१

[प्रति : श्री चीनु बी० शाह, ९९९ बावेश्वर की पोल, रायपुर, अहमदाबाद-१ गुजरात]

११६ / संन्यास में छलाँग

प्यारी सावित्री,

प्रेम। कब तक करेगी बाहर भीतर का भेद?

शरीर और आत्मा का?

पदार्थ और परमात्मा का?

काफी किया--अब छोड़।

संन्यास न है बाहर से, न भीतर से।

संन्यास बाहर-भीतर का अभेद है।

और इसलिए कहीं से प्रारंभ कर--अंत सदा एक है।

असली बात है कि **प्रारंभ कर** और स्थगन न कर।

रजनीश के प्रणाम

२४-१-१९७१

(प्रति : डा० सावित्री पटेल, पोस्ट किल्ला पारडी, जि० बलसार, गुजरात)

११७ / याचना प्रार्थना की हत्या है

मेरे प्रिय,

प्रेम। प्रभु के द्वार पर याचक की भाँति कभी मत जाना।

वहाँ कुछ माँगना ही मत।

माँग--याचना प्रार्थना की हत्या है।

भिक्षा-पात्र सदा ही वहीं छोड़ देना--मंदिर के बाहर, जहाँ कि जूते छोड़े जाते हैं।

और तब बहुत मिलता है--**तब ही मिलता है।**

माँगे जो कभी नहीं मिलता--**बिना माँगे वह सदा ही मिल जाता है।**

रजनीश के प्रणाम

२४-१-१९७१

[प्रति : श्री केदार सिंहल, नीमच, म० प्र०]

११८ / संतुलन--विचार और भाव में, तर्क और श्रद्धा में

प्रिय सतीश,

प्रेम। पश्चिम हो गया है एक दुःख स्वप्न (Nightmare), यह होना ही था।

जीवन के नियम न अपवाद को मानते हैं; और न ही किसी को क्षमा करते हैं।

अतियाँ आत्मघाती (Suicidal) **हैं--सदा-सदैव।**

पश्चिम में जो हो रहा है, वह बुद्धि पर अतिविश्वास का सहज परिणाम है।

अति-विश्वास यानी अंधविश्वास।

पूर्व ने भी की थी एक अति--भाव की, हृदय की।

फिर मोणा परिणाम।

अब पश्चिम ठीक दूसरे ध्रुव (Polarity) पर वही भूल कर बैठा है।

अरस्तु (Aristotle) काफी नहीं है।

कृष्ण भी अनिवार्य हैं।

विज्ञान काफी नहीं है--धर्म भी अनिवार्य है।

जीवन है एक बारीक संतुलन और नाजुक भी।

विचार में--भाव में।

तर्क में--श्रद्धा में।

गणित में--काव्य में।

अर्थात्, विरोधी ध्रुवों में।

और जहाँ भी खोया यह अर्न्तसंगीत (Hormony), वहीं जीवन संताप (Anguish) है।

मिशेल को बहुत प्रेम।

रजनीश के प्रणाम

२४-१-१९७१

[प्रति : श्री सतीश पंचाल, एफ-१४१, एल-हरमिटेज बाउलेवर्ट जे. केनेडी, Cobbeil (Sud) फ्रांस]

११९ / ध्यान की गहराई के साथ ही संन्यास-चेतना का आगमन

मेरे प्रिय,

प्रेम। बहुमूल्य है तुम्हारा अनुभव।

जो चाहते थे, वही हुआ है।

द्वार खुला है—जन्मों-जन्मों से बन्द पड़ा द्वार।

इसलिए पीड़ा स्वाभाविक है।

नया जन्म हुआ है तुम्हारा।

इसलिए, प्रसव से गुजरना पड़ा है।

भय जरा भी मन में न लाना।

भय हो तो मेरा स्मरण करना।

स्मरण के साथ ही भय तिरोहित हो जायेगा।

मेरी आँखें सदा ही तुम्हारी ओर हैं।

जो भी सहायता आवश्यक होगी, वह तत्काल पहुँच जायेगी।

आनन्द भी बाढ़ की भाँति आ गया है।

उससे भी न घबड़ाना।

जब भी आनन्द बढ़े तभी बस प्रभु को धन्यवाद देना और शान्त रहना।

जब संन्यास का भाव बढ़ेगा।

उससे भी चिन्तित मत होना।

अब तो संन्यास स्वयं ही आ जायेगा।

आ ही रहा है।

बादल तो घिर ही गये हैं।

बस, अब वर्षा होने को ही है।

और हृदय की धरती तो सदा से ही प्यासी है।

रजनीश के प्रणाम

२५-१-१९७१

[प्रति : श्री सेवन्तीलाल, सी० शाह, अहमदाबाद, गुजरात]

१२० / गहरे ध्यान के बाद ही जाति-स्मरण का प्रयोग

मेरे प्रिय,

प्रेम। **विगत जन्म की स्मृति में उतर सकते हो।**

लेकिन, **उसके पूर्व गहरे ध्यान** (Deep Meditation) **का प्रयोग अति आवश्यक है।**

उसके बिना पीछे लौटाना चेतना को अत्यंत **कठिन** है और यदि किसी भाँति संभव भी हो तो **खतरनाक भी।**

इसलिए, गहरे ध्यान के पूर्व मैं कोई सुझाव नहीं दे सकता हूँ।

इसे कठोरता मत समझ लेना।

ऐसा मैं करुणावश ही लिख रहा हूँ।

साधारण चित्त अतीत जन्म की स्मृतियों की बाढ़ को झेलने में समर्थ नहीं है।

इसलिए, प्रकृति उस द्वार को बंद कर देती है।

और पूर्ण तैयारी के बिना प्रकृति के नियमों से खेल खेलना महँगा सिद्ध होता है।

रजनीश के प्रणाम

२५-१-१९७१

[प्रति : श्री इन्द्रजीत शंगारी, रानी बाजार, बीकानेर, राजस्थान]

१२१ / उसके लिए द्वार खुला छोड़ दो स्वयं का

मेरे प्रिय,

प्रेम । कुछ भी न करो ।
बस प्रतीक्षा के अतिरिक्त ।
जैसे कि बीज भूगर्भ में प्रतीक्षा करता है ।
प्रतीक्षा ही प्रार्थना है तुम्हारे लिए ।
प्रतीक्षा ही साधना है ।
अज्ञात में श्रद्धा की घोषणा है प्रतीक्षा (Awaiting) ।
उसके ही हाथ जो आवृत्त है उसे अनावृत्त करेंगे ।
उसके ही हाथ जो अव्यक्त है उसे व्यक्त करेंगे ।
लेकिन उसे मौका दो ।
बाधा भर न बनना उसके मार्ग में ।
उसके लिए द्वार खुला छोड़ दो स्वयं का ।
वह मिटाये तो मिटना ।
क्योंकि, यही उसके बनाने का ढंग है ।
वह तोड़ेगा, ताकि बीज अंकुर बने ।
वह तुम जो हो, उसे मिटायेगा, ताकि तुम वह हो सको जो कि तुम हो सकते हो ।

रजनीश के प्रणाम

२५-१-१९७१

[प्रति : श्री प्रबोध खन्ना, द्वारा–सुश्री सोनी बत्रा, १०१, काकोरी कालोनी, बरसोवा रोड, अन्धेरी, बम्बई–५८]

१२२ / मौन के तारों से भर उठेगा हृदयाकाश

मेरे प्रिय,

प्रेम । जब पहले-पहले चेतना पर मौन का अवतरण होता है, तो संध्या की भाँति सब फीका-फीका और उदास हो जाता है––जैसे सूर्य ढल गया हो और रात्रि का अँधेरा धीरे-धीरे उतरता हो और आकाश थका-थका हो दिन भर के श्रम से ।

लेकिन, फिर आहिस्ता-आहिस्ता तारे उगने लगते हैं और रात्रि के सौंदर्य का जन्म होता है ।

ऐसा ही होता है मौन में भी ।
विचार जाते हैं, तो उनके साथ ही एक दुनिया अस्त हो जाती है ।
फिर मौन आता है, तो उसके पीछे ही एक नयी दुनिया का उदय भी होता है ।
इसलिए, जल्दी न करना ।
घबड़ाना भी मत ।
धैर्य न खोना ।
जल्दी ही मौन के तारों से हृदयाकाश भर उठेगा ।
प्रतीक्षा करो और प्रार्थना करो ।

रजनीश के प्रणाम

२५-१-१९७१

[प्रति : श्री अरुण जे० पटेल, प्रागजी वन्द्रावन बिल्डिंग, जमालगली, बोरिवली, बंबई–९२]

१२३ / बहुत देर हो चुकी है--आ जावें अब

मेरे प्रिय,

प्रेम। बीज की भाँति संभाला है जिसे सदा हृदय में, अब उसे बोने का समय आ गया है।

ऋतु अनुकूल है और आकाश के देवता अनुग्रह करने को आतुर हैं।
फिर अवसर आना भी जानते हैं और जाना भी।
वे आते हैं और न पकड़े जावें तो सहज ही खो भी जाते हैं।
फिर वे पुनः इस मार्ग से लौटेंगे इसका भी भरोसा कहाँ है ?
और वे लौटें भी तो हम होंगे यह कौन कहे ?
वैसे पुनरुक्त कुछ भी नहीं होता है।
इतिहास कभी भी नहीं दोहराता है।
इसीलिए, तो भविष्य सदा अज्ञेय है।
इसीलिए तो अपरिभाष्य है घटनाएँ।
और अव्याख्य है जीवन।
आ जावें अब।
ऐसे भी बहुत देर हो चुकी है।

रजनीश के प्रणाम
२५-१-१९७१

[प्रति : श्री पी० एफ़० शाह, १, वुडलेण्ड स्ट्रीट, स्टाकटन-आनटीज, टी साइड इंग्लैण्ड]

१२४ / स्वयं से पलायन और संसार की चिंता

मेरे प्रिय,

प्रेम। संसार ऐसे ही चलता रहा है--चलता रहेगा।
कल भी ऐसा ही था और कल भी ऐसा ही होगा।
लेकिन, कल तुम नहीं थे--और कल तुम नहीं होओगे।
इसलिए, आज ही तुम्हारा जीवन है।
इसे आज ही जियो--गहराई में और समग्रता में।
और स्वयं से पलायन के लिए संसार की चिन्ता में न पड़ो।
स्वयं को जान सको तो काफी से ज्यादा है।

रजनीश के प्रणाम
२५-१-१९७१

[प्रति : श्री माधव, जबलपुर, म० प्र०]

प्रिय मंजु,

प्रेम। मुक्ति के लिए सिवाय अहंकार के और कोई बाधा नहीं है।

यदि, गुरु से यह अहंकार भरता हो तो गुरु भी बाधा है।

लेकिन, 'गुरु नहीं' से भी यह अहंकार भर सकता है।

अहंकार के मार्ग अति-सूक्ष्म हैं!

शास्त्र से, आप्त-प्रमाण (Authority) से अहंकार पोषित होता हो तो उनसे बचना।

लेकिन, 'आप्त-प्रमाण-नहीं' (No-Authority) से भी अहंकार वही कार्य ले सकता है, ले लेता है।

इस ओर कुआँ––उस ओर खाई।

ऐसा ही है मार्ग।

मध्य में संभालना स्वयं को।

'मज्झिम निकाय' (The Middle way) का सदा स्मरण रखना।

मेहेर बाबा और कृष्णमूर्ति दोनों के मध्य है मार्ग।

अतीत में खतरा मेहेर बाबा जैसे व्यक्ति से था!

भविष्य में खतरा कृष्णमूर्ति जैसे व्यक्ति से है!

और खतरा एक ही, अहंकार का।

खतरा मेहेर बाबा या कृष्णमूर्ति में नहीं है।

खतरा है मत की चालबाजियों में।

मत एक अति से सदा ही दूसरी अति पर चला जाता है।

अन-अति मन की मृत्यु है।

और मध्य अनअति है।

रजनीश के प्रणाम

२५-१-१९७१

[प्रति : सुश्री मंजु शाह, c/o डॉ० एस० बी० शाह, घाटकोपर, बम्बई–८६]

मेरे प्रिय समदर्शी,

प्रेम। **खींचा है,** इसीलिए तो खिंचे हो।

पुकारा है इसीलिए तो आना चाहते हो।

बेचैन अकारण नहीं हो।

अकारण तो कुछ भी नहीं है।

नहीं दिखाई पड़ते ऐसे भी कारण हैं।

नहीं दिखाई पड़ते ऐसे भी आकर्षण हैं।

और अब उन्हीं की ओर तुम्हारी यात्रा का प्रारंभ है।

अज्ञात में कूदने के लिए तैयार हो जाओ।

न तो उस पार का कोई नक्शा ही है और न ही गन्तव्य के संबंध में कोई भविष्यवाणी ही संभव है।

लेकिन ज्ञात (Known) में आनन्द कहाँ?

क्योंकि ज्ञात में चुनौती (Challenge) नहीं है।

रजनीश के प्रणाम

२५-१-१९७१

[प्रति : श्री ब्रह्मचारी समदर्शी, मेरठ, उ० प्र०]

१२७ / अहंकार की सूक्ष्म लीला को पहचानना

मेरे प्रिय,

प्रेम। सूक्ष्म हैं मार्ग अहंकार के।
और फिर वह बहुरूपिया भी है।
विनम्रता के वस्त्रों में भी वह उपस्थित हो जाता है।
समर्पण की आड़ में तक वह अपने को बचाता है।
प्रार्थना में झुके हुए सिर के पीछे भी वह अकड़ कर खड़ा रहता है।
सेवा में भी वह मालकियत करता है।
पैर दबाते हुए भी वह गर्दन पर कब्जा रखता है।
प्रेम में भी वह स्वामित्व (Possession) बन जाता है।
और प्रार्थना में भी।
अहंकार की इस सूक्ष्म लीला को पहचानना—उसके सब रूपों में।
क्योंकि **अहंकार की पहचान** ही उसकी मृत्यु है।
अहंकार का अज्ञान अहंकार का जीवन है।
अहंकार का ज्ञान अहंकार की मृत्यु।

रजनीश के प्रणाम

२५-१-१९७१

[प्रति : श्री केदार सिंहल, नीमच, म० प्र०]

१२८ / गंभीरता का रोग और जीवन का हल्कापन

मेरे प्रिय,

प्रेम। गंभीरता से न लो जीवन को।
अभिनय जानो।
हल्के-फुल्के मन से जियो।
और **साक्षी-भाव** रखो।
नाटक है बड़ा और मंच है विराट्।
उसमें हम भी हैं पात्र छोटे-से।
अकिंचन——न कुछ।
फिर थोड़ी ही देर में पर्दा गिरेगा।
मृत्यु पात्रों को मंच से वापिस बुला लेगी।
कहा-सुना सब होगा शून्य।
किया-धरा सब होगा राख।
इसे अभी ही स्मरण रखो न ?
मृत्यु को स्मरण रखो तो जीवन गंभीर नहीं रह जाता है।
गंभीरता रोग है।
और, जब जीवन गंभीर नहीं, बोझिल नहीं, भारी नहीं, तभी जीवन, जीवन है।

रजनीश के प्रणाम

२५-१-१९७१

[प्रति : श्री श्याम दुर्गे, c/o श्री एस० एन० कस्तुरे, जी० पी० ओ०, अकोला, महाराष्ट्र]

१२९ / विचार किया बहुत--अब ध्यान करें

मेरे प्रिय,

प्रेम । निश्चय ही जीवन तथाकथित दैनंदिन जीवन से कुछ ज्यादा है ।
ज्यादा भी और भिन्न भी ।
भिन्न भी और अन्य भी ।
उसकी प्यास जगी तो शुभ है ।
उसकी अभीप्सा स्वभावतः बेचैन भी करेगी ।
लेकिन, **बेचैनी के बिना चैन** की उपलब्धि नहीं है ।
राह का श्रम ही तो मंजिल तक पहुँचाता है ।
चाह की पीड़ा ही तो गति है ।
और गति के बिना गन्तव्य कहाँ ?
इसलिए, इस बेचैनी के लिए प्रभु को धन्यवाद दें ।
और सिर्फ बेचैन न हों, **अब खोज के लिए कुछ करें भी ।**
विचार किया बहुत ।
अब ध्यान करें ।
अर्थात्--निर्विचार में चलें ।
निस्तरंग चित्त में ।
या अ-चित्त (No-mind) में ।
विचार के धुएँ को हटायें और खोजें स्वयं की धूम्रहीन अन्तर्ज्योति को ।

रजनीश के प्रणाम

२६-१-१९७१

[प्रति : डॉ० रमेश व्यास, ९।२, नार्थ हरसिद्धि, इन्दौर-२, म० प्र०]

१३० / उद्देश्य नहीं—खोजो जीवन को ही

मेरे प्रिय,

प्रेम । जीवन का उद्देश्य न खोजो तो अच्छा ।
वह खोज **उस भाँति** असंभव है ।
उसमें सीधे ही पड़ने से सिवाय भटकन के और कुछ भी हाथ नहीं लगता है ।
खोजना ही है तो **खोजो जीवन को ही ।**
'क्यों' नहीं--'क्या' को बनाओ प्रस्थान-बिन्दु ।
और फिर 'क्यों' भी जान लिया जाता है ।
उद्देश्य भी होता है ज्ञात, लेकिन वह परोक्ष परिणाम है ।

रजनीश के प्रणाम

२६-१-१९७१

[प्रति : श्री माधव, रमेश जनरल स्टोर्स, गंजीपुरा रोड, जबलपुर, म० प्र०]

मेरे प्रिय,

प्रेम। **प्रभु के आशीर्वाद प्रतिपल बरस रहे हैं।**

आँखें खोलें और देखें।

हृदय खोलें और ग्रहण करें।

उसके द्वारा कंजूसी नहीं है।

पर हम ही कृपण हैं।

वह देने में कृपण नहीं, लेकिन हम लेने में भी कृपण हैं।

सूर्य द्वार पर खड़ा है उसका।

लेकिन, हम द्वार-दरवाजे बन्द कर अपने ही द्वारा निर्मित अँधेरे में डूबे हैं।

उसकी हवाएँ हमारी नाव को आनन्द-तट पर ले जाने को आतुर हैं; लेकिन हम नावों को जंजीरों से बाँधे बैठे हैं।

खूँटियाँ उखाड़ें––जंजीरें छोड़ें।

और देखें कि वह सदा से ही नाव को वहीं ले जाना चाहता रहा है जो कि हमारी जन्मों-जन्मों की कामना है।

रजनीश के प्रणाम

२६-१-१९७१

[प्रति : श्री कांतिलाल टी० सेठिया, पुरलिया रोड, पो० चास, धनबाद, बिहार]

प्रिय आनन्द मूर्ति,

प्रेम। मैं पीछा करूँगा ही।

मेरी आँखें तुम्हारे पीछे छाया की भाँति ही लगी रहेंगी।

तब तक जब तक कि तुम्हारी स्वयं की आँखें नहीं खुल जाती हैं।

वह सौभाग्य क्षण दूर तो नहीं––निकट ही है और फिर भी कठिन है, वैसे ही जैसे पर्वतीय शिखर देखने पर निकट और चढ़ने पर बहुत दूर मालूम होने लगते हैं।

दूरी स्थान में नहीं––चढ़ाई में है।

कठिनाई तल-परिवर्तन की है।

वस्तुतः घाटियों से असत्य की जो यात्रा आरंभ करता है **वही** सत्य के शिखर तक कभी नहीं पहुँचता है।

वह तो मार्ग में खो जाता है, गिर जाता है।

वह तो मार्ग में ही निर्जरा को उपलब्ध हो जाता है।

इसलिए, चलता है कोई और––और पहुँचता है कोई और।

स्वयं के इस अतिक्रमण में ही कठिनाई है।

यही तप है––यह रूपान्तरण (Transformation) ही तपश्चर्या है।

रजनीश के प्रणाम

२६-१-१९७१

[प्रति : स्वामी आनन्दमूर्ति, मांडवी की पोल, अहमदाबाद–१]

१३३ / चाहिए पागल प्रेम——सरल श्रद्धा और समग्र स्वीकृति

मेरे प्रिय,

प्रेम। उद्देश्य की भाषा प्रभु के लिए लागू नहीं है।

लक्ष्य की दिशा पूर्ण के लिए असंगत है।

अंश के लिए जो सार्थक है, वही अंशी के लिए सार्थक नहीं है।

इसलिए, प्रभु ने किस उद्देश्य से जगत् बनाया, इस **व्यर्थ के ऊहापोह में न पड़ें।**

उससे अंततः कुछ भी निष्पत्ति नहीं है।

अच्छा हो कि **स्वयं को खोजें।**

स्वयं को जानें।

स्वयं को जीतें।

और शायद फिर किसी दिन स्वयं के साक्षात्कार के क्षण में निरुद्देश्य——अलक्ष्य प्रभु-लीला के रहस्य की झलक मिल सके।

ध्यान रहे : मैं कहता हूँ——**रहस्य की झलक——आपके प्रश्नों के उत्तर नहीं।**

अस्तित्व समस्या (Problem) **नहीं है——अस्तित्व रहस्य** (Mystry) **है।**

इसलिए, प्रश्नोत्तर का विद्यालीय ढंग वहाँ काम नहीं करता है——

वहाँ तो चाहिए प्रेमियों जैसा पागल प्रेम या बच्चों जैसी सरल श्रद्धा या संतों जैसी समग्र स्वीकृति।

रजनीश के प्रणाम

२६-१-१९७१

[प्रति : श्री बहादुरसिंह मारु, ३०६ सी राजेन्द्रनगर, इन्दौर, म० प्र०]

१३४ / स्वयं से मिलन के पहले बहुत-कुछ आयेगा और जायेगा

मेरे प्रिय,

प्रेम। ध्यान की गति से प्रसन्न हूँ।

अब व्यवधान न पड़ने देना।

नियमित श्रम करते रहें।

शीघ्र ही खजाने हाथ पड़ेंगे।

भय का कोई भी कारण नहीं है।

जो भी हो रहा है वह शुभ है।

संकेतों के भी साक्षी रहें——उनके संबंध में सोच-विचार न करें।

बहुत हो तो लिख दें और भूल जावें।

बहुत-कुछ आयेगा और जायेगा——इसके पहले कि स्वयं से मिलना हो।

पर गाड़ी मार्ग पर है और मंजिल भी दूर नहीं है।

मेरी शुभ-कामनाएँ।

रजनीश के प्रणाम

२५-१-१९७१

[प्रति : श्री मदनलाल चौधरी, द्वारा—एच. एन. २१४।३—८, जलियाँवाला बाजार, धोबियान, अमृतसर, पंजाब]

१३५ / रत्ती भर अहंकार--और सब बेकार

मेरे प्रिय,

प्रेम। अहंकार की जरा-सी बदली भी चाँद को ढँक लेती है।

अहंकार का जरा-सा तिनका भी आँख में पड़ा हो तो हिमालय भी दिखाई पड़ना बन्द हो जाता है।

इसलिए, प्रार्थना ही करनी हो तो रत्ती भर अहंकार को बचाने की भी चेष्टा मत करना--इसलिए भी; क्योंकि **अहंकार विभाजित नहीं होता है** और रत्ती भर के नाम पर पूरा ही बच जाता है।

रजनीश के प्रणाम

२६-१-१९७१

[प्रति : श्री केदार सिंहल, नीमच, म० प्र०]

१३६ / धैर्य और साक्षीत्व--साधक के पाथेय

प्यारी समाधि,

प्रेम। शरीर-चक्रों पर कार्य शुरू हुआ है।

अनायास और अकारण ही किसी चक्र पर पीड़ा होने लगेगी।

उससे न भयभीत होना और न ही उसकी चिकित्सा में पड़ना।

उसके प्रति साक्षी-भाव रख कर ध्यान जारी रखना।

जब भी ऐसी पीड़ा हो तो पीड़ा के कारण ध्यान स्थगित नहीं करना।

पीड़ा का कार्य है, वह होते ही, वह जैसे आयी थी वैसे ही विदा हो जायेगी।

चक्र पड़े हैं बंद वर्षों से--जन्मों से।

उनमें पुनः सक्रियता के कारण ही पीड़ा होती है।

कानों में कभी गर्म वायु निकलेगी।

रीढ़ में कभी कोई सर्प जैसी शक्ति सरकेगी।

शरीर में अपरिचित कंपन होंगे।

भीड़ में भी सन्नाटे की आवाज सुनाई पड़ेगी।

नींद कभी अचानक टूट जायेगी और अशरीरी भाव का अनुभव होगा।

ध्यान में नाद सुनाई पड़ेंगे।

जो भी हो उसे देखना--चिंता में नहीं पड़ना।

मृत्यु भी आती मालूम हो तो उसे भी स्वीकार करना और साक्षी रहना।

क्योंकि, ध्यान में मृत्यु की अनुभूति ही अमृतत्त्व का द्वार है।

रजनीश के प्रणाम

२७-१-१९७१

[प्रति : मा योग समाधि, पंकज, ४४ प्रह्लाद प्लाट, राजकोट, गुजरात]

१३७ / चेतना के प्रतिक्रमण का रहस्य-सूत्र

मेरे प्रिय,

प्रेम। अंधकार बाहर ही है।
भीतर तो सदा ही आलोक है।
ध्यान बहिर्गामी है तो रात्रि है।
ध्यान अन्तर्गामी बने तो रात्रि दूर जाती है और सुबह का जन्म हो जाता है।
बाहर से हटावें मन को।
मुड़ें भीतर की ओर।
शब्द से रहें—मौन हों।
विचार से विश्राम लें—शून्य हों।
बाह्य को भूलें—और स्मरण करें उसका जो कि भीतर है।
जब भी समय मिले—चेतना की धारा को भीतर की ओर ले चलें।
सोते समय—सोने के पूर्व आँखें बन्द करें और भीतर देखें।
जागते समय—ज्ञात हो कि नींद टूट गयी है तो आँखें न खोलें—पहले देखें भीतर। और धीरे-धीरे चेतना के क्षितिज पर सूर्योदय हो जायेगा।
और जिसके भीतर प्रकाश है, फिर उसके बाहर भी अंधकार नहीं रह जाता है।

रजनीश के प्रणाम

२७-१-१९७१

[प्रति : श्री गोवर्धनलाल वर्मा, राणक ब्रदर्स, चंद्र बिल्डिंग, एवेन्यू रोड, बैंगलोर-२]

१३८ / ध्यान करें—चिंतन नहीं

मेरे प्रिय,

प्रेम। आपकी साधना से प्रसन्न हूँ।
इतना संकल्प हो तो कुछ भी असंभव नहीं है।
लेकिन, ध्यान रखें कि सोच-विचार में नहीं पड़ना है।
प्रयोग करें—विचार नहीं।
ध्यान करें—चिन्तन नहीं।
चिंतन को फिलहाल छुट्टी दें।
इससे चिंतन को भी विश्राम मिलेगा और आपको भी।
जो ज्ञात नहीं उसके संबंध में सोचने-विचारने का उपाय ही नहीं है।
विचार तो ज्ञात की ही जुगाली है।
ध्यान है अज्ञात में छलांग।
अज्ञात में ही यात्रा करें।
लौट-लौट कर पीछे न देखें।
अनुभव के बिना कुछ भी न होगा।
और विचारणा अनुभव की परिपूरक (Substitute) नहीं है।
इसीलिए तो दर्शन (Philosophy) धर्म नहीं है।

रजनीश के प्रणाम

२७-१-१९७१

[प्रति : श्री मिश्रीलाल राजूलाल सकलेचा, सदर बाजार, धमतरी, म० प्र०]

१३९ / ध्यान--धर्म अर्थात् मृत से अमृत की यात्रा

प्रिय पद्मा,

प्रेम। शरीर आज है, कल नहीं।

इसलिए **जो सदा है उस पर ध्यान दो।**

वही मंगल है, उसमें ही मंगल है।

शरीर का सीढ़ी की भाँति उपयोग करो।

लेकिन, शरीर गंतव्य नहीं है।

शरीर में निवास करो--शरीर घर है।

लेकिन, शरीर ही मत हो जाओ--**तुम शरीर नहीं हो।**

शरीर अस्वस्थ भी होगा।

मरेगा भी।

लेकिन, शरीर के साथ **तुम्हें** अस्वस्थ होने की जरूरत नहीं है।

और जब शरीर के अस्वस्थ होने पर भी पाओ कि तुम स्वस्थहो, **उसी दिन** तुम जानना कि स्वस्थ हो।

अन्यथा, शरीर की मृत्यु में तुम्हें स्वयं की मृत्यु की भ्रांति होगी।

अनेक बार--अनंत बार इसी भ्रांति में तो जन्मी और मरी हो।

अब छोड़ो इस भ्रांति को।

अब तोड़ो इस अज्ञान को।

शरीर मरे और तुम जान सको कि तुम अमर हो, यही तो लक्ष्य है ध्यान का, धर्म का।

इस लक्ष्य को सदा स्मरण रखो।

बस, तुम इतना ही करो और शेष सब अपने आप हो जाता है।

रजनीश के प्रणाम

२७-१-१९७१

[प्रति : सुश्री पद्मा बाबुभाई, इंजीनियर, १५-सरस्वती महाल, पौड फाटा, ऐरण्डवणा, पूना-४]

१४० / व्यक्तित्व के आमूल रूपान्तरण पर ही प्रेम घटित

मेरे प्रिय,

प्रेम। प्रेम बंधन नहीं है।

प्रेम ही पूर्ण स्वतंत्रता है।

लेकिन, जिस प्रेम को मनुष्य जानता है, वह प्रेम बन्धन ही है।

और जब प्रेम बन्धन होता है, तो घृणा से भी बदतर हो जाता है।

स्वर्ण की जंजीरें निश्चय ही लोहे की जंजीरों से ज्यादा खतरनाक हैं।

असल में, **मनुष्य जैसा है वैसा ही वह प्रेम में समर्थ नहीं है।**

उसके **सब संबंध मूलतः कम या ज्यादा अप्रेम** के ही संबंध हैं।

उसके प्रेम और उसकी घृणा में **गुणात्मक** (Qualitative) नहीं, बस परिमाणात्मक (Quantitative) ही अन्तर है।

और इस अन्तर में सिवाय धोखे के और कुछ भी नहीं है।

और धोखा भी स्वयं को ही।

वस्तुतः गहरे में, **स्वयं को धोखा देकर ही** हम दूसरों को धोखा दे सकते हैं।

प्रेम की घटना (Happening) के पूर्व मनुष्य का आमूल रूपान्तरण (Total Mutation) अनिवार्य है।

यह रूपान्तरण है अहंकार से निरहंकार की ओर।

अहं के साथ प्रेम का सह-अस्तित्व (Co-existence) **असंभव है।**

और अहं-अभाव में प्रेम का अनस्तित्व असंभव है।

रजनीश के प्रणाम

२१-१-१९७१

[प्रति : श्री केदार सिंहल, नीमच, म० प्र०]

१४१ / काम रासायनिक है––और प्रेम आध्यात्मिक

प्रिय भरत,

प्रेम। प्रेम को पहचानना कठिन है।

क्योंकि, पृथ्वी पर उससे अधिक सूक्ष्म और कुछ भी नहीं है।

सूक्ष्मता के कारण ही वह स्वप्नवत् भी मालूम होता है।

पर ध्यान और सम्यक् स्मृति (Right Mindfulness) से उसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म तरंगों के आघात भी हृदय पर अनुभव होने लगते हैं।

निश्चय ही तुम समझ गये होगे कि मैं जिस प्रेम की बात कर रहा हूँ, वह वही प्रेम नहीं है जिसकी कि लोग बात करते हैं।

काम (Sex) की संवेदनाओं को ही लोग प्रेम कहते हैं।

काम रासायनिक (Chemical है।

प्रेम आध्यात्मिक।

काम जैविक (Biological) है।

प्रेम जीवन।

काम प्रेम का द्वार बन सकता है और यही उसकी सार्थकता है।

लेकिन काम प्रेम का परिपूरक भी बन सकता है और तब उससे ज्यादा खतरनाक और कुछ भी नहीं है।

रजनीश के प्रणाम

७-३-१९७१

[प्रति : प्रो० भरत जे० सेठ, डिपार्टमेंट ऑफ बाटेनी, अहमदनगर कॉलेज, अहमदनगर, महा०)

१४२ / अप्रेम के काँटे और प्रेम के फूल

प्रिय बासंती,

प्रेम। प्रेम संबंध नहीं है।

वस्तुतः प्रेम का दूसरे से प्रयोजन ही नहीं है।

प्रेम है जीने का एक ढंग।

और अप्रेम भी है जीने का ही ढंग।

प्रेम है फूल की भाँति जीना।

अप्रेम है काँटे की भाँति जीना।

लेकिन, काँटे दूसरों को चुभते हैं––अप्रेम स्वयं की ही छाती में चुभ जाता है।

और फूल दूसरों को सुगंध देते हैं––प्रेम स्वयं को ही सुगंध से भर जाता है।

रजनीश के प्रणाम

२६-२-१९७१

[प्रति : श्रीमती बासंती बखारिया, खेड़ा केम्प, गुजरात]

प्यारी उर्मिला,

प्रेम। अहंकार विष है।

उससे ही प्रेम विषाक्त होता है।

प्रेम के लिए अहंकार को शूली देनी पड़ती है।

प्रेम को अहंकार का आभूषण नहीं बनाया जा सकता है।

यद्यपि सदा वैसी ही चेष्टा चलती है।

इसलिए प्रेम के नाम पर सिर्फ रोग ही हाथ लगता है।

और अंततः विषाद--अर्थहीन विषाद जीवन को अँधेरे की भाँति घेर लेता है।

प्रेम के द्वार के बाहर ही स्वयं को जो छोड़ देता है और **अहंकार शून्य हो प्रेम के मंदिर में प्रवेश** करता है वह अनायास ही प्रार्थना को उपलब्ध हो जाता है।

मिलने की तैयारी दिखा--क्योंकि वही प्रेम को पाने की कुंजी है।

रजनीश के प्रणाम

१०-३-१९७१

पुनश्च : अप्रैल में आबू में साधना-शिविर है--आ सके वहाँ तो प्रार्थना में उतर सके या फिर कभी बम्बई आकर मिलना--वैसे आबू आना बहुत उपादेय होगा।

[प्रति : सुश्री उर्मिला, गोरखपुर]

मेरे प्रिय,

प्रेम। प्रेम है बेशर्त दान।

बेशर्त अर्थात् अपेक्षा रहित।

जहाँ अपेक्षा है वहीं वही प्रेम विषाक्त है।

और विषाक्त प्रेम घृणा से भी बदतर हो जाता है।

फिर प्रेम संबंध (Relationship) भी नहीं है।

उसमें संबंधों के फूल लगें यह अलग बात है।

प्रेम मूलतः मनोदशा (State of Mind) है।

जैसे दिया जले अंधकार में, ऐसे ही हृदय में प्रेम जलता है।

किसी के लिए नहीं--जो भी निकट है उसी के लिए।

जैसे फूल खिले ऐसे ही प्रेम खिलता है।

स्वयं के ही लिए--स्वान्तः सुखाय।

पर जो भी आये पास उसे सुगंध तो मिलती ही है।

बेशर्त (Unconditional)।

अपेक्षा-रहित।

स्वयं के आधिक्य से।

और कोई पास न आये तो भी तो दिया जलता है एकांत में--तो भी तो फूल खिलता है निर्जन में।

ऐसे जलो--ऐसे ही खिलो।

रजनीश के प्रणाम

२९-१-१९७१

[प्रति : श्री विनुकुमार एच० सुथार, पाटन, गुजरात]

१४५ / प्रेम को पूजा बना

प्यारी उर्मिला,

प्रेम। प्रेम को पूजा बना।

प्रिय को प्रभुमय देख।

प्रिय को प्रभु जान कर ही सेवा कर।

अपेक्षाएँ छोड़ दे सब--वे ही प्रेम को प्रार्थना नहीं बनने देती हैं।

प्रेम ने बिना दिये माँगा कुछ कि वह काम बना।

प्रेम ने बिना-शर्त दिया सब-कुछ कि वह प्रार्थना बना।

रजनीश के प्रणाम

१२-३-१९७१

[प्रति : सुश्री उर्मिला, गोरखपुर]

१४६ / प्रतीक्षारत प्रेम प्रार्थना बन जाता है

प्यारी रमा,

प्रेम। प्रतीक्षा निखारती है--स्वच्छ करती है।

क्योंकि, प्रतीक्षा धैर्य है।

अधैर्य कुरूप करता है--चित्त को धुएँ में भरता है।

क्योंकि, अधैर्य तनाव है।

प्रेम प्रतीक्षा बन सके तो प्रार्थना बन जाता है।

और प्रार्थना से निर्दोष और सुंदर और कुँआरी कोई भाव-दशा नहीं है।

रजनीश के प्रणाम

१७-२-१९७१

[प्रति : सौ० रमा पटेल, अहमदाबाद]

१४७ / प्रेम प्रार्थना बनते ही दिव्य हो जाता है

प्यारी उर्मिला,

प्रेम। प्रेम तब तक पंगु ही है जब तक कि प्रार्थना न बन जाये।
क्योंकि प्रेम मानवीय है; और इसलिए मनुष्य की सभी सीमाओं से आबद्ध है।
प्रेम प्रार्थना बनते ही दिव्य हो जाता है और समस्त सीमाओं से मुक्त भी।
प्रेम के तीन रूप हैं——काम, प्रेम, प्रार्थना।
काम पाशविक है——निन्दात्मक अर्थों में नहीं——बस, तथ्य की दृष्टि से।
प्रेम मानवीय है।
प्रार्थना दिव्य है।
काम का तल शरीर है।
प्रेम का मन।
प्रार्थना का आत्मा।
प्रेम काम से शुरू हो यह स्वाभाविक है।
पर काम पर ही रुक जाये तो दुर्घटना है।
प्रेम मन को घेरे यह उपादेय है।
पर मन पर ही रुक जाये तो रुग्ण है।
प्रेम की पूर्णता तो प्रार्थना में ही है।

रजनीश के प्रणाम
११-३-१९७१

[प्रति : सुश्री उर्मिला, गोरखपुर]

१४८ / साकार प्रेम और निराकार प्रार्थना

मेरे प्रिय,

प्रेम। एकान्त-निर्जन पथ पर खिले फूल की भाँति ही हो रहो।
बिखेरो सुवास बेशर्त।
अपेक्षा-रहित।
फलाकांक्षा-शून्य।
कोई राह से निकले राहगीर तो ठीक।
और न निकले तो भी ठीक।
क्योंकि, जहाँ कोई भी नहीं, वहाँ भी प्रभु तो है ही।
राहगीर है तो प्रभु साकार है।
पथ निर्जन है तो प्रभु निराकार है।
साकार में प्रभु को देख पाना प्रेम है।
निराकार में देख पाना प्रार्थना।
प्रेम प्रार्थना बनता रहे, यही साधना है।

रजनीश के प्रणाम
१५-२-१९७१

[प्रति : श्री विनय कुमार एच० सुथार, चाचरिया, पाटण, (उत्तर-गुजरात)]

१४९ / प्रेम-गली अति साँकरी

प्यारी विमल,

प्रेम। **प्रेम में जीना मुक्ति है।**

ऐसे जियो जैसे सब ओर प्रभु है।

प्रियतम का स्मरण रहे——उठते-बैठते, जागते-सोते।

श्वांस-श्वांस में उसकी ही धुन हो।

और धीरे-धीरे स्वयं को भूलो——खो दो।

वही बचे और तुम न बचो।

तभी और केवल तभी उसे पाया जाता है।

स्वयं के रहते उससे मिलन नहीं है।

प्रेम की गली अति सँकरी है और उसमें दो के समाने का कोई उपाय नहीं है।

रजनीश के प्रणाम

६-३-१९७१

[प्रति : सुश्री विमला सिंहल, नीमच कैंट, नीमच, म० प्र०]

१५० / "ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय"

प्रिय दलजीत,

प्रेम। मैं जानता हूँ कि तुम जो कहना चाहते हो, वह कह नहीं पाते हो।
लेकिन, कौन कह पाता है?
प्राणों के सागर के लिए शब्दों की गागर सदा ही छोटी पड़ती है।
जीवन सच ही एक अबूझ पहेली है।
लेकिन, उन्हीं के लिए जो उसे बूझना चाहते हैं।
पर बूझना आवश्यक कहाँ है?
असली बात है **जीना**——बूझना नहीं।
जीवन जियो और फिर जीवन पहेली नहीं है।
फिर है जीवन एक रहस्य।
पहेली जीवन को गणित बना देती है।
गणित चिंता और तनाव को जन्माता है।
रहस्य जीवन को बना देता है काव्य।
और काव्य है विश्राम।
काव्य है रोमांस।
और जीवन के साथ जो रोमांस में है, वही धार्मिक है।
तर्क जीवन को समस्या (Problem) की भाँति देखता है।
प्रेम जीवन को समाधान जानता है।
इसलिए तर्क अन्ततः उलझाता है।
और **प्रेम समाधि बन जाता है।**
समाधि अर्थात् पूर्ण समाधान।

इसलिए कहता हूँ कि **जीवन को तर्क का अभ्यास** (Exercise) **मत बनाओ; जीवन को बनाओ प्रेम का पाठ।**

'ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।'

रजनीश के प्रणाम

३०-१२-१९७०

[प्रति : श्री दलजीत सिंह, आई. टी. सी. मेहरचंद टेक्निकल इंस्टीट्यूट, जालंधर (पंजाब)]

भगवान्श्री रजनीश-साहित्य

क्र०	पुस्तक	भाषा हिंदी	गुज०	मराठी	अंग्रेजी	पृष्ठ हिंदी	मूल्य हिंदी
१.	साधना-पथ	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	१६०	५–००
२.	क्रांति-बीज	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	१३८	४–००
३.	सिंहनाद	हाँ	हाँ	हाँ	नहीं	८०	१–२५
४.	मिट्टी के दिये	हाँ	हाँ	...	हाँ	१९६	३–५०
५.	पथ के प्रदीप	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	२१३	३–५०
६.	मैं कौन हूँ ?	हाँ	हाँ	...	हाँ	१०३	२–००
७.	अज्ञात की ओर	हाँ	हाँ	...	हाँ	७१	२–००
८.	नये संकेत	हाँ	हाँ	...	हाँ	७३	१–७५
९.	संभोग से समाधि की ओर	हाँ	हाँ	...	हाँ	१४६	५–००
१०.	अन्तर्यात्रा	हाँ	हाँ	...	निर्माणरत	२२२	३–५०
११.	शांति की खोज	हाँ	निर्माणरत		...	१०४	२–००
१२.	सत्य की खोज	हाँ	...	...	...	१२८	४–००
१३.	अस्वीकृति में उठा हाथ	हाँ	...	...	...	१५४	५–००
१४.	शून्य की नाव	हाँ	...	...	...	११६	३–००
१५.	प्रभु की पगडण्डियाँ	हाँ	...	...	निर्माणरत	१५८	४–००
१६.	सत्य की पहली किरण	हाँ	...	...	...	१८८	६–००
१७.	समाजवाद से सावधान	हाँ	निर्माण०	...	निर्माण०	१३६	४–००
१८.	प्रेम के फूल	हाँ	...	हाँ	...	१८०	५–००
१९.	ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया	हाँ	...	...	...	१४२	४–००
२०.	संभावनाओं की आहट	हाँ	...	...	...	१६५	६–००
२१.	जिन खोजा तिन पाइयाँ	हाँ	...	...	...	६०८	२०–००
२२.	गीता-दर्शन (पुष्प–१)	हाँ	..	..	..		३–००
२३.	गीता-दर्शन (पुष्प–२)	हाँ	...	...	...	१३८	४–००

क्र०	पुस्तक	भाषा				पृष्ठ	मूल्य
		हिंदी	गुज०	मराठी	अंग्रेजी	हिंदी	हिंदी
२४.	गीता-दर्शन (पुष्प–५)	हाँ	...	...	...	१६२	५–००
२५.	अमृत-कण	हाँ	हाँ	हाँ	...	२४	०–६०
२६.	अहिंसा-दर्शन	हाँ	हाँ	...	हाँ	३२	०–५०
२७.	कुछ ज्योतिर्मय क्षण (प्रेस में)	हाँ	हाँ	...	...	५५	१–००
२८.	नये मनुष्य के जन्म की दिशा	हाँ	हाँ	...	...	४०	०–७५
२९.	सूर्य की ओर उड़ान	हाँ	हाँ	...	...	६५	१–००
३०.	प्रेम के पंख	हाँ	हाँ	हाँ	हाँ	५७	०–७५
३१.	सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	हाँ	हाँ	...	...	५५	१–५०
३२.	नारगोल : युवक-युवतियों के समक्ष प्रवचन	हाँ	हाँ	...	...	२०	०–२५
३३.	क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार (भारत के साधु-संत)	हाँ	हाँ	...	...	३०	०–३५
३४.	न आँखों देखा, न कानों सुना (गोपनीय गांधी)	हाँ	...	...	...	८	०–१५
३५.	क्रांति की नयी दिशा, नयी बात (नारी और क्रान्ति)	हाँ	...	...		३०	०–३०
३६.	व्यस्त जीवन में ईश्वर की खोज	हाँ	हाँ	...	...	२०	०–२५
३७.	युवक कौन ?	हाँ	...	...	...	२४	०–३०
३८.	युवा और यौन	हाँ	हाँ	...	...	२४	०–३०
३९.	बिखरे फूल (बोध-वचन संकलन)	हाँ	...	...	...	३६	०–३५
४०.	संस्कृति के निर्माण में सहयोग	हाँ	...	...	...	२८	०–३०
४१.	प्रेम और विवाह	हाँ	...	...	...	३२	१–५०
४२.	मन के पार	हाँ	...	...	...	८५	१–००

क्र०	पुस्तक	भाषा				पृष्ठ	मूल्य
		हिंदी	गुज०	मराठी	अंग्रेजी	हिंदी	हिंदी
४३.	पूर्व का धर्म : पश्चिम का विज्ञान	हाँ	...	...	...	२५	०–५०
४४.	परिवार-नियोजन	हाँ	...	...	...	३२	०–३५
४५.	सारे फासले मिट गये	हाँ	...	...	...	८४	१–२५
४६.	अन्तर्वीणा	हाँ	...	...	...	१९२	६–००
४७.	ढाई आखर प्रेम का	हाँ	...	...	...	१८४	६–००
४८.	महावीर : मेरी दृष्टि में	हाँ	...	...	...	७७२	३०–००

प्रेस के लिए बड़ी पुस्तकें :

४९. मैं मृत्यु सिखाता हूँ (ध्यान, समाधि और मृत्यु पर १५ प्रवचन)
५०. सूली ऊपर सेज पिया की (पंच महाव्रत पर ८ प्रश्नोत्तर-प्रवचन)
५१. कृष्ण : मेरी दृष्टि में (कृष्ण के जीवन, साधना व संदेश पर २७ घंटे के प्रवचन)
५२. गीता-दर्शन (गीता के प्रथम ४ अध्यायों पर ५० घंटे के प्रवचन)

पुस्तकें प्रेस के लिए :

५३. पद घुंघरू बाँध (१५० पत्रों का संकलन)
५४. घूँघट के पट खोल (१५० पत्रों का संकलन)
५५. जीवन ही है परमात्मा (जूनागढ़ साधना-शिविर प्रवचन एवं ध्यान-प्रयोग)
५६. जो घर बारै आपना (आजोल साधना-शिविर प्रवचन एवं ध्यान-प्रयोग)
५७. शून्य के पार (ज्ञान, भक्ति व कर्म पर दिये गये राजकोट के ४ प्रवचन)
५८. समाधि के द्वार पर (पूना में दिये गये प्रवचन एवं ध्यान के प्रयोग)
५९. योग : नये आयाम (पूना में दिये गये प्रवचन एवं ध्यान के प्रयोग)

पुस्तकें जो केवल गुजराती में हैं :

क्र०	पुस्तक	प्रकाशक	पृष्ठ	मूल्य
६०.	गांधी मा डोकीयु अने समाजवाद	प्रकाशक युवक क्रांति दल, द्वारा जीवन जागृति केन्द्र, बम्बई	२९	०–३५
६१.	अतीत नी आलोचना अने भावी नु चिंतन	,,	२०	०–३५
६२.	भ्रांत समाजवाद : और एक खतरो	,,	२७	०–५०
६३.	तरुण विद्रोह	,,	३२	०–५०
६४.	जीवन अने मृत्यु	,,	६३	१–००
६५.	परमात्मा क्यां छे ?	आर० अम्बाणी एण्ड कं०, राजकोट	३४	०–५०

६६. प्रेम, परमात्मा अने परिवार आर० अम्बाणी एण्ड कं०, राजकोट		४०	०–५०
६७. गांधीवादी क्यां छे ?	,,	४०	०–५०
६८. गांधीवाद : वैज्ञानिक दृष्टिए	,,	२८	०–५०
६९. धर्म अने राजकारण	,,	२१	०–४०
७०. उठ जाग जुवान	,,	३२	०–५०
७१. गांधीजी नी अहिंसानु पुनरावलोकन	,,	३२	०–५०
७२. क्रांति नी वैज्ञानिक प्रक्रिया	,,	२८	०–६०
७३. धर्म विचार नथी उपचार	,,	२८	०–६०
७४. व्यस्त जीवन मां ईश्वर नी शोध	,,	१९	०–५०
७५. समाजवाद थी सावधान	,,	४२	०–७५
७६. पूर्णावतार श्रीकृष्ण	,,	१६	०–५०
७७. प्रेम नी प्राप्ति संस्कारतीर्थ, आजोल, जि० महेसाणा		३२	०–४०
७८. अभिनव संन्यास	,,	३२	०–५०
७९. ध्यान	,,	३२	०–५०
८०. प्रेम	,,	४५	०–७५
८१. परिवार	,,	४८	०–७५
८२. संकल्प	,,	४८	०–७५
८३. अन्तर्द्रष्टा आचार्य रजनीशजी जीवन चरित्र (अनु० श्री यशवंत मेहता) साहित्य निधि, २१।२२, प्रीतमनगर, एलिस ब्रिज, अहमदाबाद		४०	०–७५
८४. अन्तर्द्रष्टा आचार्य रजनीशजी जीवन प्रसंगो	,,	३२	०–५०
८५. अन्तर्द्रष्टा आचार्य रजनीशजी नी ज्ञानवाणी	,,	६४	०–५०

आलोचनात्मक अध्ययन ग्रन्थ :

८६. आचार्य रजनीश : समन्वय, विश्लेषण और संसिद्धि (हिन्दी) आलोचक—डॉ० रामचन्द्र प्रसाद प्रकाशक : मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली	२१४	७–५०
८७. काम, योग, धर्म और गांधी	२४०	३–००
८८. आचार्य रजनीश : कया मार्गे ? (गुजराती) आलोचक : श्री नानुभाई डाह्याभाई नायक प्रकाशक : साहित्य संगम, बड़ौदा	१७२	२–००

८९. आचार्य रजनीश : ए मिस्टिक ऑफ फीलिंग आलोचक : डॉ० रामचन्द्र प्रसाद प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली	२४०	२०–००
९०. रजनीश : ए ग्लिम्प्स (अंग्रेजी) लेखक : वी० वोरा	२४	१–२५
९१. जीवन-क्रांति की दिशा (हिंदी) आचार्यश्री से डॉ० सेठ गोविंददास द्वारा की गयी चर्चाओं के नोट्स प्रकाशक : सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली	१३२	२–००
९२. समाजवादा पासून सावध रहा (मराठी) प्रकाशक : जीवन जागृति केन्द्र, बम्बई	१२	०–५०
९३. अहिंसा-दर्शन (गुरुमुखी)		०–४०
९४. जीवन जो राज (सिंधी)	४०	०–५०
९५. साधना-पथ (पंजाबी)	१७५	३–००

(नयी पुस्तकें)

९६. प्रेम है द्वार प्रभु का	२५०	८–००
९७. मैं कहता आँखन देखी (प्रश्नोत्तर-प्रवचन)	१३६	६–००
९८. गहरे पानी पैठ	१३८	५–००
९९. दी गेटलेस गेट (अंग्रेजी)	४८	२–००
१००. दी सायलेंट म्युजिक (,,)	४०	२–००
१०१. लिफ्टिंग दी व्हील (अंग्रेजी) स्वामी आनन्द वीतराग		(प्रेस में)

प्राप्ति-स्थान
जीवन-जागृति केन्द्र

(१) ५३, एम्पायर बिल्डिंग, १ ली मंजिल,
१४६, डॉ० डी. एन. रोड, **बम्बई–१**; फोन : २६४५३०

(२) इजराइल मोहल्ला, भगवान भुवन,
मस्जिद बंदर रोड, **बम्बई–९**; फोन्स : ३३९५६०, ३३७६१८, ३२७००९

(३) A-1, Woodland. Apt, Peddar Road,
Bombay-26, Phone : 382184

●